बाल विज्ञान पत्रिका मार्च 2014

चकमक

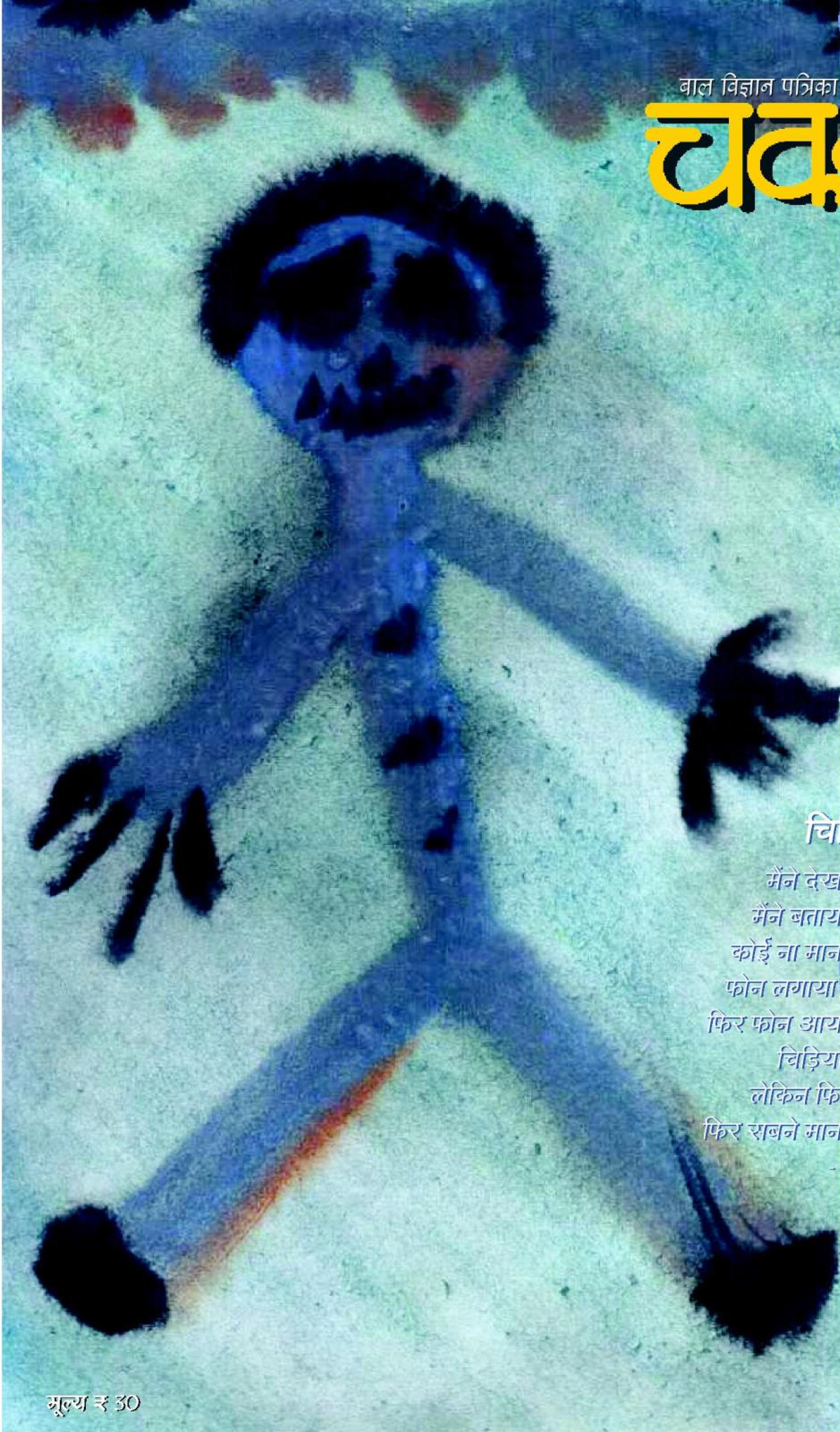

चिड़िया उड़ गई...

मैंने देखा कि चिड़िया उड़ गई
मैंने बताया कि चिड़िया उड़ गई
कोई ना माना कि चिड़िया उड़ गई
फोन लगाया क्या चिड़िया उड़ गई
फिर फोन आया कि चिड़िया उड़ गई
चिड़िया वापिस उड़कर आई
लेकिन फिर से चिड़िया उड़ गई
फिर सबने माना कि चिड़िया उड़ गई

- बीहू, 8 वर्ष, भोपाल, म. प्र.

मूल्य ₹ 30

बाल विज्ञान पत्रिका

चकमक

अंक 330 मार्च 2014

कबूतर

भले कबूतर
चले कबूतर
बड़े प्यार से
पले कबूतर

जुड़े कबूतर
मुड़े कबूतर
आसमान में
उड़े कबूतर

इधर कबूतर
उधर कबूतर
जाने कब हैं
किधर कबूतर

- अज्ञात

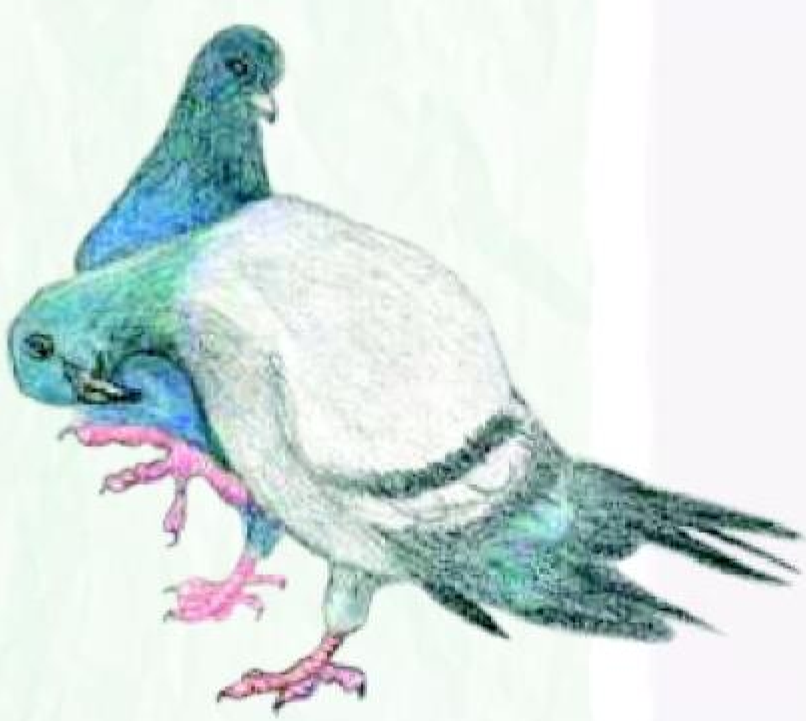

4 बोली रंगोली
6 एक था हाजी एक था नाजी
8 भाषा सीखना
10 लँगड़ा गुड्डा की छलाँग
15 मेरा पन्ना
16 ढेला और पतई
19 माथापच्ची
20 विज्ञान प्रयोगों का कमाल
22 मेरा पसन्दीदा चित्र
24 जंगल में मोर नाचा, मैंने देखा...
26 एर्विकुलम की चिड़िया
28 अन्तरिक्ष केन्द्र में एक दिन
32 मेरी पाकिस्तान यात्रा....
34 अण्डे का फण्डा!
36 बतूता का जूता
38 बोली रंगोली
40 बसन्त मेरे गाँव का
42 गुगली
43 चित्रपहेली
44 उड़ती पतंग

हाशिए के चित्र द ब्रेव एंट से साभार
चित्रकारः जी. पाव्लिशन, प्रोग्रेस प्रकाशन

सम्पादन
सुशील शुक्ल
शशि सबलोक

सहायक सम्पादक
कविता तिवारी

विज्ञान सलाहकार
सुशील जोशी

आवरण चित्र
चित्रः श्रेय भगनानी,
सातवीं, भोपाल

सम्पादकीय सलाहकार
रेक्स डी रोज़ारियो

डिज़ाइन
दिलीप चिंचालकर

इस अंक में

40

बसन्त की गुनगुनी धूप जब दोपहरी में तपाने लगती है तब ऊँचे हिमालय पर बुराँस चटकने लगते हैं।

24

सुबह-शाम के झुटपुटे में और रात-बेरात अँधेरे में इनकी मियाँओं-मियाँओं की आवाज़ें आती ही रहती थीं, अब यह… क्वाँक्!

6

अरे ऐ सनम गई रे शास्त्री की!! गई!! शास्त्री!! तुम्हारी पूरी ज़िन्दगी गई। व्यर्थ! नष्टो स-माँ-प्ट!!

16

हो सकता है ढेले पतई कहीं मिल जाएँ

8

किपलिंग का बच्चा मोगली जो लोमड़ियों के बीच पला बढ़ा था, क्या वो कोई भाषा सीख पाया होगा?

विप्रो एप्लाइंग थॉट इन स्कूल्स के वित्तीय सहयोग से विकसित

वितरण

झनक राम साहू

सहयोग

मिताली अहीर
वरुण ग्रोवर
मिहिर
प्रभात
कमलेश यादव

सदस्यता शुल्क

एक प्रतिः	30.00	(व्यक्तिगत)
	50.00	(संस्थागत)
वार्षिकः	300.00	(व्यक्तिगत)
	500.00	(संस्थागत)
तीन सालः	800.00	(व्यक्तिगत)
	1350.00	(संस्थागत)
आजीवनः	4000.00	(व्यक्तिगत)
	6000.00	(संस्थागत)

सभी डाक खर्च हम देंगे। चन्दा (एकलव्य के नाम से बने) मनीऑर्डर/चैक से भेज सकते हैं। भोपाल के बाहर के चैक में 80.00 रुपए अतिरिक्त जोड़ें।

एकलव्य

ई-**10**, शंकर नगर, बीडीए कॉलोनी, शिवाजी नगर, भोपाल, म.प्र. **462016**
फोनः **(0755) 4252927, 2550976, 2671017**
फैक्सः **(0755) 2551108**
e mail - chakmak@eklavya.in
e mail - circulation@eklavya.in
www.chakmak.eklavya.in
www.eklavya.in

इक पेड़ है जिससे, एक ही पत्ता
रोज़ ज़मीं पर गिरता है
सदियों से ये रीत है उसकी,
गिरता है, तब खिलता है!

- गुलज़ार

दोस्तो, इस बार भी हमें तुम्हारे सैंकड़ों चित्र मिले। गुलज़ार साब के पसन्दीदा पाँच चित्र यहाँ पेश हैं। इन पाँचों चित्रकारों को उपहार में चकमक की एक साल की सदस्यता मिलेगी। सोलह चित्र और भी हैं जो हमें पसन्द आए। इन्हें तुम पेज 38 पर देख सकते हो।

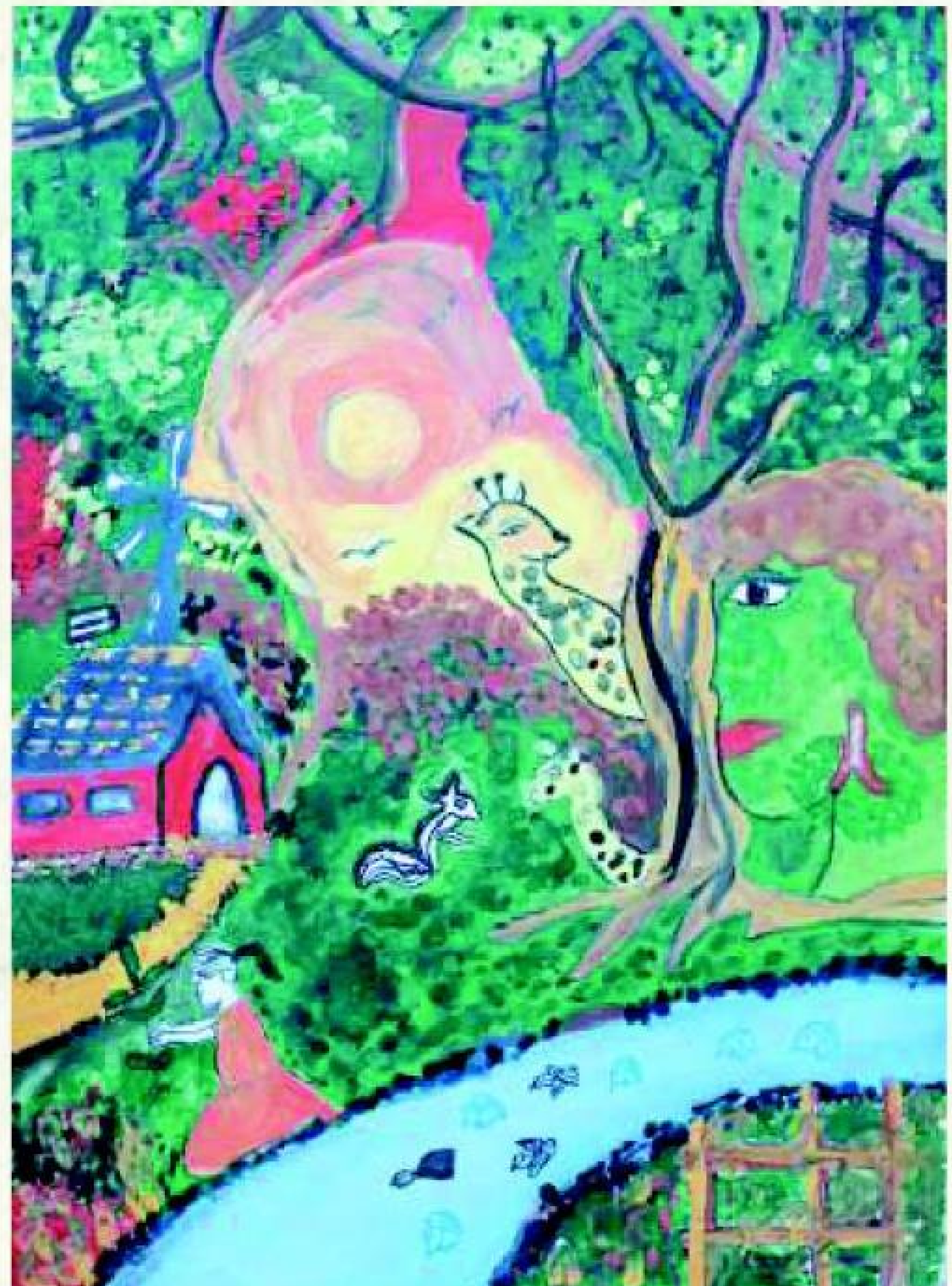

अमोघ भटनागर,
एयर फोर्स स्कूल, ग्वालियर, म.प्र.

डिम्पल भारती
बाल निकेतन, भोपाल, म.प्र.

अप्रैल की पंक्तियाँ हैं ..

इतना सस्ता और कहाँ, सौदा मिलेगा
बीज दो ज़मीन को, पौदा मिलेगा!

हो सकता है बड़े तुम्हें इसके अर्थ बताएँ। उनके अर्थ सुनो-समझो पर चित्र अपने मन का ही बनाओ...। कोशिश करना कि तुम्हारा चित्र हमें **12 मार्च** तक मिल जाए। चित्र के साथ अपना पता, कक्षा, फोन नम्बर ज़रूर लिखना।

हमारा पता है -

चकमक, एकलव्य, ई-10, शंकर नगर, बी.डी.ए. कॉलोनी, शिवाजी नगर, भोपाल -16
फोन - 09425010115
chakmak@eklavya.in

बोली रंगोली

सानिया
दिगन्तर,
जयपुर, राजस्थान

ज्योत्सना रमेश अनुभूति, बाल भवन, बंगलौर, कर्नाटक

श्रुति पुरोहित
मॉडर्न पब्लिक स्कूल, दिल्ली

एक था हाजी एक था नाजी

स्वयं प्रकाश

मल्लाह का शास्त्र

चित्रः अतनु राय

ना. जी. शास्त्री कथा कहने नदी के पार वाले गाँव जा रहे थे। घाट पर एक ही नाव थी। नाव हाजी मल्लाह की थी जो पढ़ा-लिखा नहीं था। वह माझी बहुत गज़ब का था।

शास्त्रीजी को नाव में बिठाकर हाजी मल्लाह ने नाव खोली और खुश होकर बोला, "जब भी मैं किसी विद्वान को अपनी नाव में बिठाते हैं मेरे को खूब खुशी जैसी होते हैं। के चलो भाई कोई बात नहीं, मैं भी किसी विद्वान की सेवा तो करते हैं!!"

वह इसी तरह अपनी बात करता रहा। शास्त्रीजी कुछ देर तो सहन करते रहे फिर बोले, "माझी चुप हो जाओ! भगवान के लिए चुप हो जाओ। तुम्हारी भ्रष्ट भाषा से मुझे अपार कष्ट हो रहा है। इतने बड़े हो गए, सामान्य व्याकरण की समझ नहीं विकसित कर पाए! गई! आधी ज़िन्दगी तो गई तुम्हारी! समाप्त!!"

चुप रहना माझी को आता ही नहीं था। बातचीत न सही, गुनगुना तो सकता है! थोड़ी देर में वह रामायण की चौपाई गुनगुनाने लगा, "ऐ सनम प्रेवीशनगर कीजे सुभ काजू! ऐ सनम हिरदे राख कोसलपुर राजू!!"

यह तो शास्त्रीजी को बिलकुल भी बर्दाश्त नहीं हुआ। डाँटकर बोले, "माझी! एकदम चुप हो जाओ। तुलसी बाबा का श्राद्ध मत करो। पुस्तक को कभी हाथ में नहीं लिया। अक्षर ज्ञान से भी दूर रहे। मैं कहता हूँ तुम्हारी तीन चौथाई ज़िन्दगी गई, व्यर्थ हो गई। नष्ट, समाप्त!!"

खैर, शास्त्रीजी की डाँट खाकर हाजी चुप हो गया और चुप ही रहा।

नाव उस पार पहुँची। शास्त्रीजी उतर गए और कथा करने चले गए।

संयोग से लौटते समय भी शास्त्रीजी को यही नाव मिली।

हाजी मल्लाह ने शास्त्रीजी को चुपचाप बैठा लिया और सारे रास्ते चुप ही रहा। वह जला-भुना बैठा था। ऐसी भी क्या सवारी जो न खुद कुछ बोले न बोलने दे! रास्ता काटना मुश्किल हो जाए!

बीच नदी में नाव कुछ गोल-गोल घूमने लगी और गोते खाने लगी।

तब हाजी मल्लाह बोला, "शास्त्रीजी आपको तैरना आता है?"

शास्त्रीजी बोले, "नहीं! तैरना तो नहीं आता! क्यों? क्या हो गया?"

हाजी चहककर बोला, "हाआँ!! अब बोलो! जाते समय तो बड़ा व्याकरण-व्याकरण कर रहे थे! अक्षरज्ञान!! अब चाटो अपना अक्षरज्ञान!!"

"क्या बात है बेटा, साफ-साफ बताओ। मेरा जी घबरा रहा है।" शास्त्रीजी बोले।

"नाव में छेद हो गया है। नाव डूबनेवाली है। मैं तो तैरकर चला जाऊँगा। तुम पकड़कर बैठे रहना अपना व्याकरण और अक्षर ज्ञान! अरे ऐ सनम गई रे शास्त्री की!! गई!! शास्त्री!! तुम्हारी पूरी ज़िन्दगी गई। व्यर्थ! नष्टो स-माँ-प्ट!!"

ना.जी. शास्त्री से कुछ भी कहते नहीं बना।

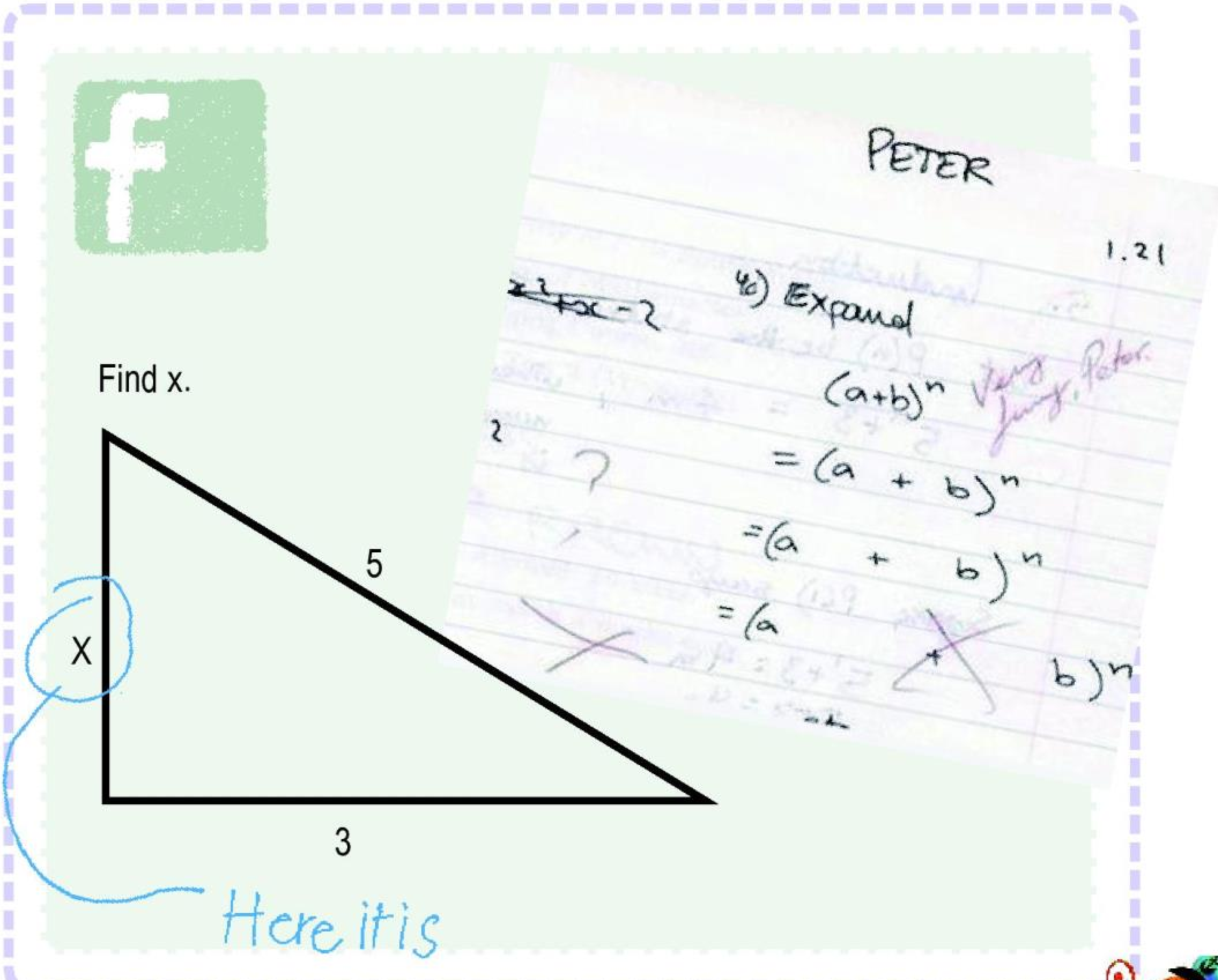

– निशिथ मेहता की पोस्ट से प्राप्त एक बच्चे की गणित की उत्तर पुस्तिका के कुछ अंश...

इन्द्राणी रॉय

भाषा सीखना

तुम्हें याद है वो दिन जब तुमने अपनी पहली भाषा सीखनी शुरू की थी! अ, आ, इ, ई ... क, ख, ग... तुम इसी तरह से धीरे-धीरे बोलना सीख रहे थे ना? माँ रोज़ तुम्हें बोलना सिखाती थीं। परिवार के सभी बड़े — नाना-नानी, दादा-दादी... शब्द सिखाते। फिर शब्दों से वाक्य बनाना बतलाते। पिता गलतियाँ सुधारते हुए सही तरह से बोलना सिखा देते थे।

अरे, ऐसा कैसे हो सकता है कि तुम्हें कुछ नहीं याद आ रहा? और यह क्या... तुम्हें यह लगता ही नहीं कि तुम इस तरह से बोलना सीखे हो?

वैसे अगर तुम्हें ऐसा लग रहा है तो बिलकुल सही लग रहा है। सच में बचपन में हम सब बिना किसी के सिखाए ही अपने-आप बोलने लगे थे। तीन-चार साल के होते-होते तो हम लोगों को कहानियाँ भी सुनाने लगे थे। चार-पाँच साल की उम्र तक आते-आते तो घरवाले बोलने लगे थे कि भई थोड़ी देर के लिए तो चुप हो जाओ!

पर शायद तुम्हें वो दिन याद हो जब स्कूल में तुमने अँग्रेज़ी सीखनी शुरू की होगी। अगर तुमने पाँचवीं या छठी से अँग्रेज़ी सीखनी शुरू की होगी तो तुम्हें थोड़ी ज़्यादा कोशिश करनी पड़ती होगी। बोलने में गलतियाँ होती होंगी जिन्हें टीचर सुधार देती होंगी। रोज़ स्कूल और घर में अभ्यास करना पड़ता होगा।

सोचो ऐसा क्यों होता है? अँग्रेज़ी भाषा मुश्किल है इसलिए? पर फिर अँग्रेज़ बच्चे कैसे तीन साल के होते-होते बिना सिखाए ही अँग्रेज़ी बोलने लगते हैं। ऐसा ही हाल चीनी, जापानी, फ्रेंच, स्वाहिली बच्चों का भी है जो अपनी भाषाएँ अपने आप ही सीख जाते हैं।

तुम्हें भाषा सीखने के अपने अनुभव शायद याद नहीं होंगे पर घर या पड़ोस के किसी छोटे बच्चे को शायद देखा हो। कैसे बिना किसी के सिखाए ही वे किस आसानी से बोलने लगते हैं!

यह एक बड़ी रोचक बात है कि बच्चों में जन्म से ही एक ऐसी क्षमता होती है कि वे अपने-आप ही किसी भी भाषा के दाँव-पेंच सीख लेते हैं। हाँ, उन्हें संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया, विशेषण भले ही न मालूम हों पर वे इनका इस्तेमाल बखूबी कर लेते हैं। और तो और अगर बच्चों को एक से ज़्यादा भाषाएँ लगातार सुनने को मिलें तो वे उन सब भाषाओं में माहिर हो जाते हैं। शायद तुम भी अपने पड़ोस के बुन्देली,

चित्रः दिलीप चिंचालकर

बचपन में हम सब बिना किसी के सिखाए ही अपने-आप बोलने लगे थे।

निमाड़ी, बांग्ला या तमिल बोलनेवाले बच्चों के साथ खेलते-खेलते उनकी भाषा बोलने लगे होगे! और मालूम है अगर उस उम्र में तुम्हें फ्रेंच या जर्मन सुनने को मिलतीं तो तुम ये भाषाएँ भी बोलना सीख जाते।

जैसे-जैसे हम बड़े होते जाते हैं यह क्षमता कम होती जाती है। तब हमें फ्रेंच या जर्मन सीखने के लिए किसी भाषा संस्थान में दाखिला लेना पड़ता है। भारत के किसी दूसरे राज्य में चले गए तो सालों लग जाते हैं वहाँ की भाषा सीखने या समझने में।

भाषा सीखने की क्षमता जन्मजात होती है। भाषा-वैज्ञानिक मानते हैं कि करीब बारह साल की उम्र के बाद यह क्षमता धीरे-धीरे कम होती जाती है। पर इस क्षमता को कारगर बनाने के लिए ज़रूरी है कि बच्चे भाषा सुनें। ऐसा नहीं हो सकता कि बिना किसी भाषा के सम्पर्क में आए सिर्फ जन्मजात क्षमता के आधार पर ही बच्चों को भाषा बोलना आ जाए।

अब ज़रा सोचकर बताओ कि रूडयार्ड किपलिंग की कहानी जंगल बुक का बच्चा मोगली जो लोमड़ियों के बीच पला-बढ़ा था, क्या वो कोई भाषा सीख पाया होगा?

चित्रः रिद्धि जैन, बारहवीं, भोपाल

पीयूष कुमार। उसका यह नाम कम ही लोग जानते थे। स्कूल के रजिस्टर में यही नाम दर्ज था और हाज़िरी लेते वक्त पुकारा जाता। स्कूल में भी कुछ ही बच्चे उसे इस नाम से बुलाते थे। बाकियों के लिए वह गुड्डा था। और हम साथियों के बीच लँगड़ा गुड्डा। मोहल्ले पड़ोस में भी सब उसे लँगड़ा गुड्डा ही बोलते थे। उसका दायाँ पैर पोलियोग्रस्त था। एक पतले बाँस की माफिक। घुटने की कटोरी गाँठ जैसी थी। हमने जबसे उसे देखा, ऐसा ही देखा। रंग साँवला, दाँत थोड़े ऊबड़-खाबड़। दुबला-पतला गुड्डा था गज़ब का फुर्तीला। अपनी डेढ़ टाँग से वह इतनी दौड़-भाग कर लेता कि दो टाँगवाले भी मात खा जाते।

पंडिताने के पक्के घरों से लगी एक कच्ची खपरैल की झोंपड़ी थी। लँगड़ा गुड्डा का परिवार उसी अँधेरी कोठरी में रहता था। पिता दरबारी लाल रेलवे में मेशन थे। चुनाई और प्लास्टर का काम करते थे। शौकिया बढ़ई भी थे और मोहल्ले में लोगों के यहाँ दरवाज़े, चौखट, खटिया-मचिया, टेबल-कुर्सी आदि की मरम्मत कर दिया करते थे। परिवार में नौ सदस्य थे – चार बहनें और तीन भाई।

तब हम दस-ग्यारह साल के रहे होंगे। मोहल्ले के हम आठ-दस साथी हर काम में साथ होते थे। अन्नू, मुन्नू, सिल्लू, जाफर, अश्फाक, बनिया गुड्डू, हेमू, लँगड़ा गुड्डा और मैं खुद। बारिश में बाँस की बड़ी-सी मढ़ैया बनाना, नीम और जामुन के पत्तों से उसकी छबाई करना और बोरी-फट्टी डालकर उस पर बैठे रहना। टीन के कनस्तरों से ट्रक बनाना और फिर ईंटों से पुल-पुलिया बनाकर उन पर गाड़ियाँ चलाना। गर्मियों की दुपहरियों में गज्जू के बाड़े में चर रही बकरियाँ पकड़कर उनका दूध दुह लेना और फिर लालमन चाचा के आँगन में ईंट का चूल्हा जलाकर चाय बनाना। कभी अपने-अपने घरों से आटा, आलू, प्याज़, तेल जुटाकर खाना पकाना खेलना। होली, दीवाली के दूसरे रोज़ पिकनिक मनाने के लिए साइकिल से बँधा जाना। नदी किनारे नीम घाट और हनुमान घाट की तरफ झाड़ीवाले जंगल में चोर-पुलिस का खेल हमारा पसन्दीदा खेल था। जिन दिनों बहरा मैदान में रामलीला चलती, हम भी दुपहरियों में पिछले दिन का प्रसंग खेलते। बाकायदा बाँस की कमटी से धनुष बान बनाए जाते। कपड़े की गेंद मुठिया में

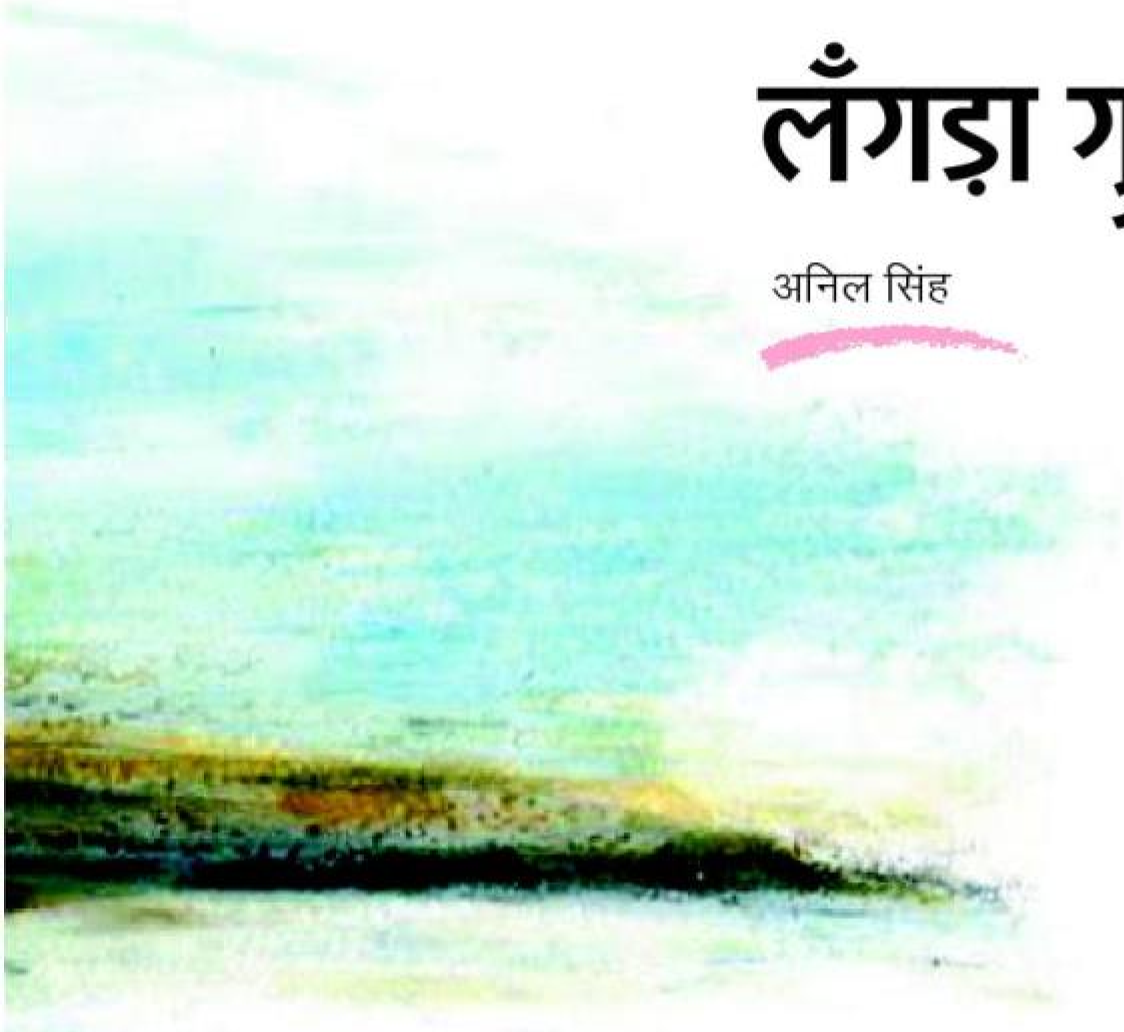

लँगड़ा गुड्डा की छलाँग

अनिल सिंह

रंग साँवला, दाँत थोड़े ऊबड़-खाबड़। दुबला-पतला गुड्डा था गज़ब का फुर्तीला। अपनी डेढ़ टाँग से वह दो टाँगवालों को भी मात दे देता।

चित्रः अतनु राय

लपेटकर गदा बनाई जाती। गत्ते के मुकुट और मूँछें बनाते। फिर दशहरे के रोज़ रावण वध और रावण पुतला दहन भी करते। यह सब हम शाम को चार-पाँच बजे तक निपटा लेते क्योंकि बहरा मैदान में रामलीला देखने के लिए आगे बैठने की होड़ जो रहती। हम अपनी-अपनी बोरी-फट्टियाँ शाम से ही बिछाकर जगह छेंक (रोक) लेते। फिर वहीं खेलते रहते और गणेश जी की आरती शुरू होने से पहले ही अपनी-अपनी जगहों पर आकर बैठ जाते।

मार्च का महीना था। थोड़ी गरम बयार चलने लगी थी। दुपहरी लम्बी लगने लगी। हम मिलते और चन्दा-पौआ खेलते। होली आनेवाली थी। होली हमारे मोहल्ले में सिर्फ पंडिताने में जलाई जाती। इधर बाद में मुसलमान टोले में भी रखी जाने लगी थी। मंटू, पप्पू, शंकर, कोद्दू, भग्गू, शरीफ, मुन्ना, दिप्पू, सप्पू, रशीद – ये सब बड़ी उमर के लड़के थे। उन्होंने मिलकर ये नई होली रखना शुरू किया था।

अब हमारी टोली के लिए यह तय करने का वक्त था कि क्या हमें भी एक नई होली रखने की शुरुआत करनी चाहिए। सबकी हामी थी। जगह तय हुई सिल्लू के घर के पिछवाड़ेवाला मैदान। मेन्दो की नानी की बाड़ी से थोड़ा हटकर।

होली के कोई 15 रोज़ बचे थे। पंडिताने की होली में बड़े-बड़े लट्ठे, ठूँठ और डूँडे आ चुके थे। छोटी झाड़ियाँ और टहनियाँ भी थीं। उनकी टीम बड़ी और साधन सम्पन्न थी। वे मिलकर तड़के जंगल निकल जाते और देर दोपहर को ठेलों में बड़े-बड़े लट्ठे लेकर लौटते। हमारे लिए छुलछुलिया घाट और नीम घाट की सूखी लिटगिनियाँ (लेंटाना) ही बहुत थीं। हम सब उन्हीं के छोटे-छोटे गट्ठर बनाकर लाते। होलीवाली जगह साफ करके पानी और मिट्टी की लिपाई की गई थी और बीच में गेड़ा की डाँग गाड़कर कपड़े की लाल झण्डी भी लगाई गई थी। डाँग की मज़बूती के लिए हाथ भर गहरा गड्ढा खोदा गया था। लिटगिनियों से हमारी होली अच्छी सुच (होलिका दहन के लिए सज़ा लकड़ियों का ढेर) गई थी। रोज़ ही हम कहीं न कहीं से सूखी लकड़ियाँ लाते और होली सुचते जाते। अब हमारा ज़्यादातर वक्त इसी जगह पर बीतता। सिल्लू के घर से बालटी में पानी आ जाता और बस हमारी दुपहरियों का इन्तज़ाम हो जाता। रग्घू चाचा ने दस रुपए का नोट दिया था। हमने पतंगी कागज़ लाकर तिकोनी झण्डियों की लड़ियाँ भी लगा दी थीं। ज़बरदस्त उत्साह था। प्लान बना कि कपड़े की एक होलिका और मिट्टी का एक प्रहलाद भी बनाया जाए। उस पर काम भी शुरू हो गया। होली जलने को अब बस पाँच ही रोज़ रह गए थे।

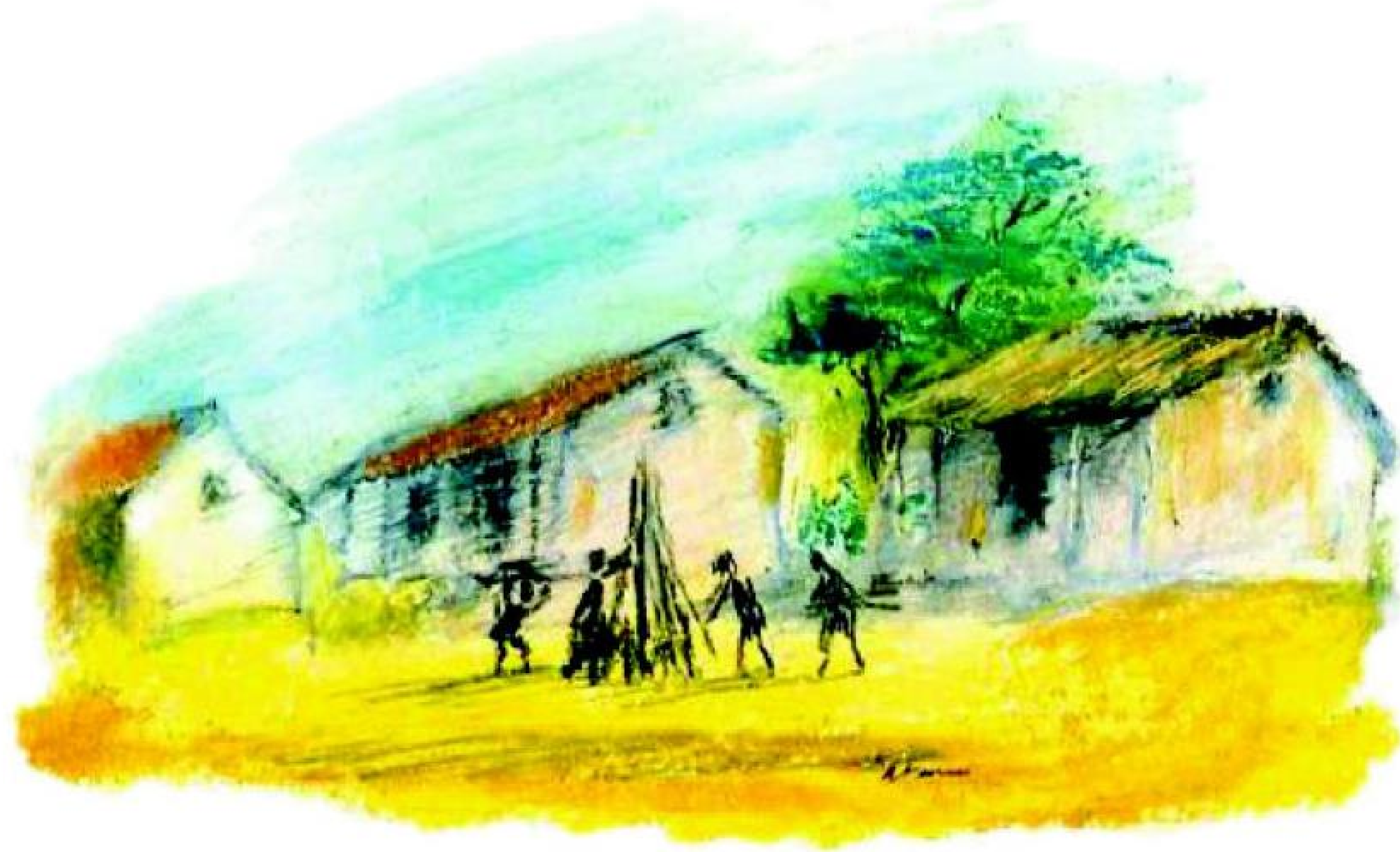

उस दिन सुबह सिल्लू दौड़ता हुआ मेरे घर आया। मेरा घर उसके घर से बिलकुल सटा हुआ था। उसने बताया कि अपनी होली से लिटगिनियाँ चुरा ली गई हैं। बस डाँग गड़ी है। मैं उसके साथ दौड़ा। जाकर देखा तो सन्न रह गया। बस इक्का-दुक्का तिनके पड़े हुए थे। कुछ समझ न आया क्या हुआ! हमने जाकर बनिया गुड्डू को बताया। फिर जाफर, अशफाक, लँगड़ा गुड्डा को खबर दी। हमारी दस रोज़ की मेहनत पर किसी ने हाथ साफ कर दिया था। आपातकालीन बैठक बुलाई गई। दो मुद्दे थे। एक तो पता लगाना कि यह किसकी करतूत है और दूसरा इतने कम समय में होली सुचने के लिए लकड़ियों का इन्तज़ाम करने की तरकीब सोचना। अपनी पहुँच तक की सारी लिटगिनियाँ तो हम पहले ही बटोर लाए थे। बहरहाल दोपहर में एक बार फिर नदी की तरफ कुम्हार टोलावाले किनारे की झाड़ियों को खँगालना तय हुआ। पर लँगड़ा गुड्डा के मन में कुछ और ही उथल-पुथल थी। उसकी यह जानने में ज़्यादा रुचि थी कि हमारी होली की लिटगिनियाँ हैं कहाँ? शाम को जब हम मिले तो उसने बताया कि पंडिताने की होली में दो नए डूँडों के बीच उसने अपनी लिटगिनियाँ देखी हैं। वो दावे के साथ कह सकता है कि ये वही लिटगिनियाँ हैं। ऐसा किसने किया होगा? वे तो बड़े हैं, वे यह हरकत क्यों करेंगे? इतनी-सी लिटगिनियाँ चुराकर उन्हें क्या मिलेगा? नतीजा कुछ न निकला। इस बीच हमने झाड़ियों के बीच बची-खुची लिटगिनियाँ लाकर किसी तरह अपनी होली की लाज बचाई।

अब दो ही रोज़ बचे थे। रात में टीपरेस का खेल खतम होने के बाद हम सब सड़क के किनारे गज्जू के बाड़े की तरफ अँधेरे में बैठे थे। अशफाक ने सुझाया चलो रात में अपनी लिटगिनियाँ निकालकर वापस ले आते हैं। पर यह जोखिम भरा काम था; किसी ने देख लिया तो! वहाँ सब बड़ी उमर के लोग शामिल थे। लँगड़ा गुड्डा जो बिलकुल मेरे बगल में बैठा था धीरे-से फुसफुसाया, “आज ही रात में फूँक दें सालों की होली? किसी को पता भी न चलेगा और खेल खतम।” हम सब सन्न रह गए थे। ये क्या कह रहा था गुड्डा! जाफर, अशफाक और बनिया गुड्डू तो इस बात से इतना डर गए कि उठकर घर ही भाग गए। अन्नु, मुन्नू को भी घर के लिए देर हो रही थी सो वे भी निकल लिए। सिल्लू और मैं लँगड़ा गुड्डा के साथ वहीं बैठे रहे। मैंने पूछा, “कैसे?” गुड्डा बोला, “तड़के जब कोई सो के भी न उठा होगा।” दिल तो मेरा भी ज़ोरों से धक-धक हो रहा था। सिल्लू हम दोनों को बस टुकुर-टुकुर ताक रहा था। बिना कुछ बोले वह सहमत था हमसे। हालाँकि उसे मुझसे यह उम्मीद कतई न रही होगी। मैंने लँगड़ा गुड्डा से पूछा, “तुम करोगे?” उसने कहा, “हाँ, रात में ही मिट्टी तेल का फोहा बनाकर रख लेता हूँ।” मैंने कहा, “माचिस भी रात में ही रख लेना। सुबह कुछ

सुबह 3 बजे ही मेरी नींद खुल गई। मैं कल्पना कर रहा था कि किस तरह लँगड़ा गुड्डा सुबह चोरी से उठा होगा और दबे पाँव होली तक पहुँचा होगा। कैसे उसने सब तरफ देखभाल के मिटटी तेल का फोहा रखा होगा, फिर माचिस सुलगाई होगी।

खटर-पटर न हो।" लँगड़ा गुड्डा ने कहा, "सब इन्तज़ाम हो जाएगा।" उसकी आँखों में मैंने एक अजीब-सी चमक देखी। हम उठे। वह लहराता-उछलता हुआ अपने घर की तरफ चल दिया। सिल्लू और मैं बिजली के खम्बे के नीचे खड़े दूर तक उसे जाता हुआ देखते रहे। रात के 11 बज रहे थे। हमारे घर पास-पास ही थे। हम भी अपने घरों में चले गए। मुझे रात में देर तक नींद नहीं आई।

सुबह 3 बजे ही मेरी नींद खुल गई। मैं कल्पना कर रहा था कि किस तरह लँगड़ा गुड्डा सुबह चोरी से उठा होगा और दबे पाँव होली तक पहुँचा होगा। कैसे उसने सब तरफ देखभाल के मिट्टी तेल का फोहा रखा होगा, फिर माचिस सुलगाई होगी। लेकिन अँधेरे में जल रही तीली दूर से दिखाई देगी। कहीं कोई देख तो न लेगा? गुड्डा ने एहतियात तो पूरी बरती होगी न? पकड़ा गया तो बुरा हाल होगा। सब धरे जाएँगे। थाना-पुलिस भी हो सकती है। डर के मारे फुरफुरी-सी दौड़ गई पूरे शरीर में। मैंने चादर सिर से ओढ़कर सोने की कोशिश की लेकिन नींद नहीं आई। उजाला होने तक जागता ही रहा मैं। जब बाबूजी के अदरक कूटने की आवाज़ आई और चाय की गन्ध मेरे नथुनों में घुसी तो मैं बिस्तर छोड़कर आँगन में चूल्हे के पास आकर बैठ गया। थोड़ी देर में सब भूल गया।

रोज़ की तरह दिन शुरू हुआ। लेकिन मन के खूब भीतर कोई आशंका अभी भी थी। बाबूजी कुर्सी लगाकर सामनेवाले कमरे के दरवाज़े पर सड़क की तरफ मुँह करके बैठे थे। मैं वहीं खड़ा सड़क की तरफ देख रहा था। एक चक्कर लँगड़ा गुड्डा के घर की तरफ मार आया था पर कुछ टोह न मिली सो यहीं आकर खड़ा हो गया था। अचानक मुझे लँगड़ा गुड्डा आता दिखा। उसके चेहरे पर डर और चिन्ता के भाव थे। मेरे अन्दर का डर एक बार फिर उभर आया। वह जल्दी-जल्दी उछलता-भागता शायद कुछ बताने आ रहा था। मैं हड़बड़ी में उसकी तरफ बढ़ लिया। "गड़बड़ हो गई यार, कतुरिया दाई ने आग लगाते मुझे देख लिया।" गुड्डा ने एक साँस में कह डाला। "कैसे?" मैंने घबराहट में पूछा। मैंने जैसे ही फोहा रखकर माचिस जलाई, लिटगिनियाँ एकदम चिटचिट करके जल उठीं और आग तेज़ी-से फैल गई। तभी झाड़ियों में शौच के लिए बैठी कतुरिया दाई चिल्लाईं, "को आए........ को आए आगी लगात है।" मैं पलटा और दूसरी तरफ भागा लेकिन तब तक कतुरिया दाई झाड़ियों के बीच से उठ खड़ी हुईं और मुझे देख लिया। वो चिल्लाईं, "रहिजा लँघड़ा... तैं आहे।" वो झटपट बाहर आकर चिल्लाने लगीं, "दउड़ा दादा... दउड़ा दादा... होरी मां आगी लग गे...।" कतुरिया दाई की आवाज़ सुनकर पंडिताने से रुदधू, शम्भू, रमेश दौड़े। पानी की बालटी ले लेकर आए और आग बुझाई। मैं तो एक छलाँग में टिग्घा (टीला) कूद के बहरा मैदान की तरफ भाग गया था। वहाँ काफी देर तक खेरदाई के मन्दिर में छुपा तमाशा देखता रहा, फिर लालपुर तरफ से घँघरी नाका होकर अभी लौटा हूँ।

हम दोनों साँस बाँधे वहीं खड़े-खड़े सोच रहे थे कि थोड़ी ही देर में सारे मोहल्ले को खबर हो जाएगी।

डर हम दोनों के सामने मुँह फाड़े खड़ा था। किसी भी क्षण पकड़े जा सकते थे। कतुरिया दाई ने पंडिताने में बता दिया होगा। घर में भी शिकायत पहुँच गई होगी। बहुत मार पड़नेवाली है। थाने पुलिस का खयाल भी आ रहा था। गलत फैसला था ये। पर अब क्या, जो होना था सो हो चुका! अपने-अपने मन के भाव एक-दूसरे को जताते और छुपाते हम वहीं बुत-से खड़े रहे।

तभी हमने देखा कि उस तरफ से कतुरिया दाई चली आ रही हैं। वो मेरे घर की तरफ ही आ रही थीं। मैंने एक नज़र देखा बाबूजी वहीं दरवाज़े पर अभी भी कुर्सी डाले बैठे थे। कतुरिया दरवाज़े पर पहुँचकर खड़ी हो गईं। हम दोनों शर्माइन की बगिया की ओट में हो गए। कतुरिया वहीं बैठकर बतियाने लगीं। कुछ सुनाई नहीं दे रहा था। शायद बहुत धीरे-धीरे बोल रही थीं। माँ ने उन्हें चाय लाकर दी और वहीं खड़े होकर उनकी बातें सुनने लगीं। हम दोनों साँस बाँधे वहीं खड़े-खड़े सोच रहे थे कि थोड़ी ही देर में सारे मोहल्ले को खबर हो जाएगी। फिर पंडिताने के खूँखार ओंकार चाचा मार-मार के हमारी हड्डी-पसली तोड़ देंगे। साजिश रचने के जुर्म में हम सब पकड़े जाएँगे। पुलिस भी आएगी।

चाय पीकर कतुरिया दाई ने बैठे-बैठे ही पानी से गिलास खँगाला और वहीं औंधा रखकर उठ खड़ी हुईं। फिर धीरे-धीरे सामने के रास्ते से बाज़ार तरफ निकल गईं। हम अब भी बगिया की ओट लेकर खड़े थे। हाथ-पाँव काँप रहे थे। हिम्मत नहीं थी कि घर जाएँ।

राहत की बात थी कि होली पूरी नहीं जली थी सिर्फ लिटगिनियाँ ही राख हुई थीं। पर देख लिए गए हैं यह तो डरानेवाला था। सिल्लू मुझे पूछने मेरे घर आया। बाबूजी ने इशारे से बताया कि उस तरफ गया है। हम दोनों देख रहे थे। सब कुछ सामान्य-सा लगा। बाबूजी ने सिल्लू से ऐसा-वैसा तो कुछ कहा नहीं। सिल्लू बगिया की तरफ ही आ रहा था। मौका देखकर मैंने उसे आवाज़ दी। वह भी वहीं आ गया। हमने सिल्लू को सारी बात बताई। डर के मारे उसका भी बुरा हाल था। अब हम तीनों वहीं दुबके हुए थे। समझ में नहीं आया कि बाबूजी ने होली में आग लगानेवाली बात के सन्दर्भ में सिल्लू से कुछ क्यों नहीं कहा। नाराज़गी क्यों नहीं दिखी। शायद अकेले में वो मुझे कहेंगे या गुड्डा के पिताजी से सीधे शिकायत करेंगे।

दोपहर तक हम यहाँ से वहाँ छुपते-छुपाते रहे। एक बार तो रास्ते में गुरु चाचा निकल रहे थे और हमें बगिया की ओट में खड़े देख उन्होंने कहा भी कि वहाँ साँप-बिच्छू निकलते हैं यहाँ खुले में खेलो। उन्होंने तो गुड्डा को भी हमारे साथ देखा, पर ऐसा-वैसा तो कुछ भी नहीं कहा।

दोपहर के डेढ़ बज रहे थे। हमें लगा अब हमें अपने-अपने घर जाना चाहिए। सब कुछ ठीक-ठाक चल रहा था। कहीं कोई शोर शराबा नहीं था। कहीं से कोई भी चिल्लाने-डाँटने-मारने-रोने जैसी कोई आवाज़ भी नहीं आई। शाम को हम सब फिर मिले पर उस बारे में कोई बात नहीं हुई। हम तीनों को लग रहा था कि शायद संकट टल गया।

(शेष भाग पेज 21 पर)

मेरा पन्ना

चिड़िया रानी

चिड़िया रानी, चिड़िया रानी
तुम हो पेड़ों की रानी
सुबह-सवेरे उठ जाती हो
क्या तुम भी पढ़ने जाती हो?
या नौकरी करने जाती हो?
शाम से पहले आती हो
बच्चों का खाना लाती हो
चूँ-चूँ चहक सुनाती हो।

—रितेश, 10 वर्ष,
अज़ीम प्रेमजी स्कूल टोंक, राजस्थान

—दीपक यादव, दूसरी, होशंगाबाद, म. प्र.

एक घायल पक्षी की आत्मकथा

जी हाँ, मैं एक घायल पक्षी हूँ। किसी शरारती लड़के ने पत्थर मारकर मुझे घायल कर दिया है। देखो, मेरे शरीर से खून बह रहा है। मेरी मौत की घड़ी बहुत नज़दीक है।

मेरे बचपन के दिन बड़े सुहावने थे। नीम की डाली पर हमारा घोंसला था। माँ मुझे घोंसले में छोड़कर दाना लेने जाती। माँ को दूर से आती हुई देखते ही मैं चीं...चीं करके चोंच खोल देता। उन दानों को खाकर मेरी खुशी का ठिकाना न रहता।

मैं कुछ ही दिनों में घोंसले से बाहर निकलकर डालियों पर फुदकने लगा। फिर कुछ ही दिनों में मैं उड़ने लगा। मैंने वर्षा ऋतु की रिमझिम और बसन्त की बहारों का आनन्द लूटा है। मैंने झरनों का अमृत जैसा पानी पिया है। तरह-तरह के फलों का स्वाद लिया है।

लेकिन हाय आज घायल होकर मैं अन्तिम साँसे गिन रहा हूँ। कैसा क्षणभंगुर है यह जीवन।

—सिरिल मेतियु जो, छटी, डी.पी.एस कोयम्बत्तूर

—पूजा वर्मा, पाँचवीं, होशंगाबाद, म. प्र.

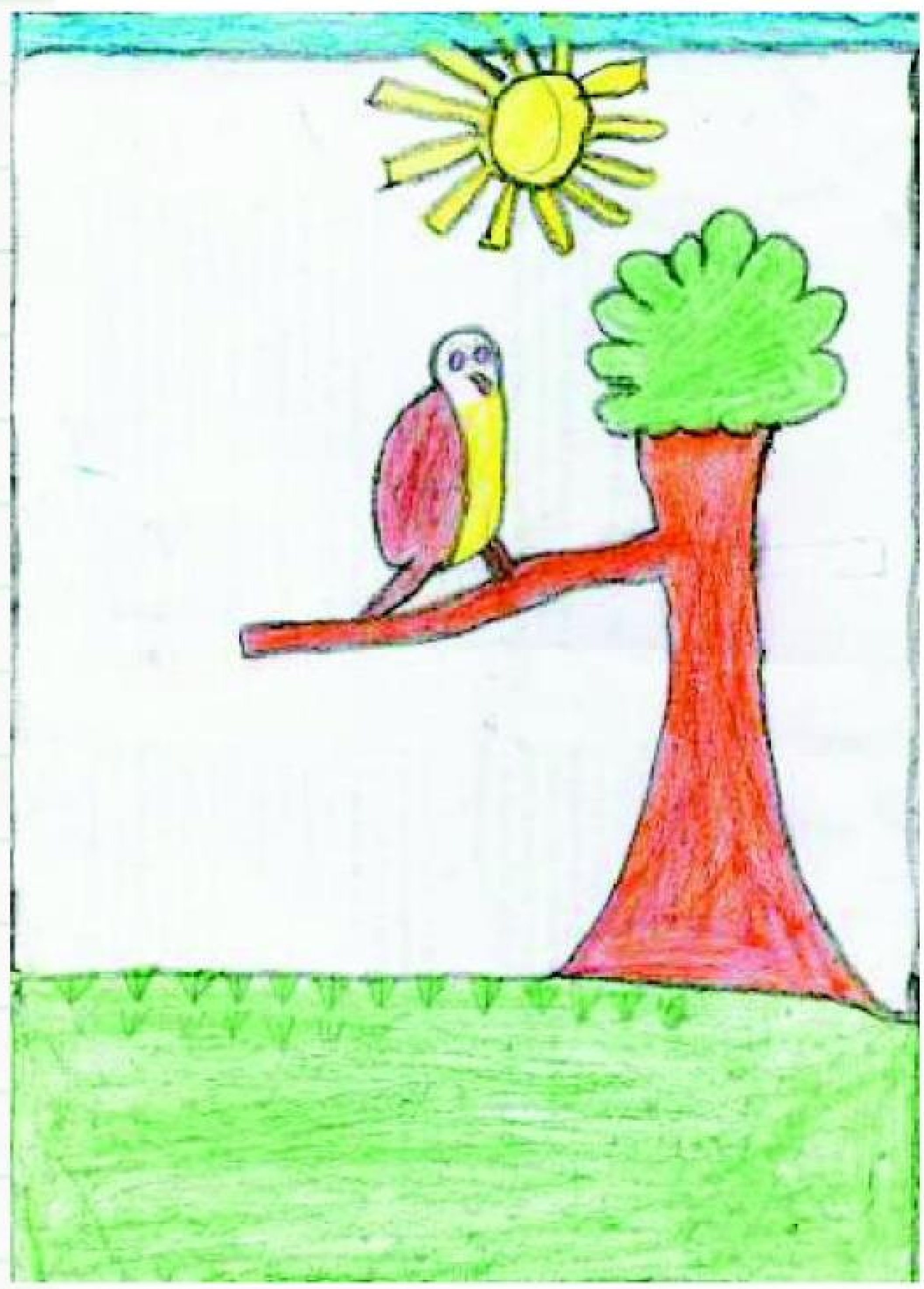

समुद्र हैं तो सोने दो

समुद्र हैं तो सोने दो,
रात चाँद में खिलने दो
समुद्र हैं तो पानी बरसे,
चिड़िया चहके, फूल खिले।

—लवीशा जैन, तीसरी, डी.पी.एस, लुधियाना, पंजाब

एक थे ढेले।
एक थी पत्ती।

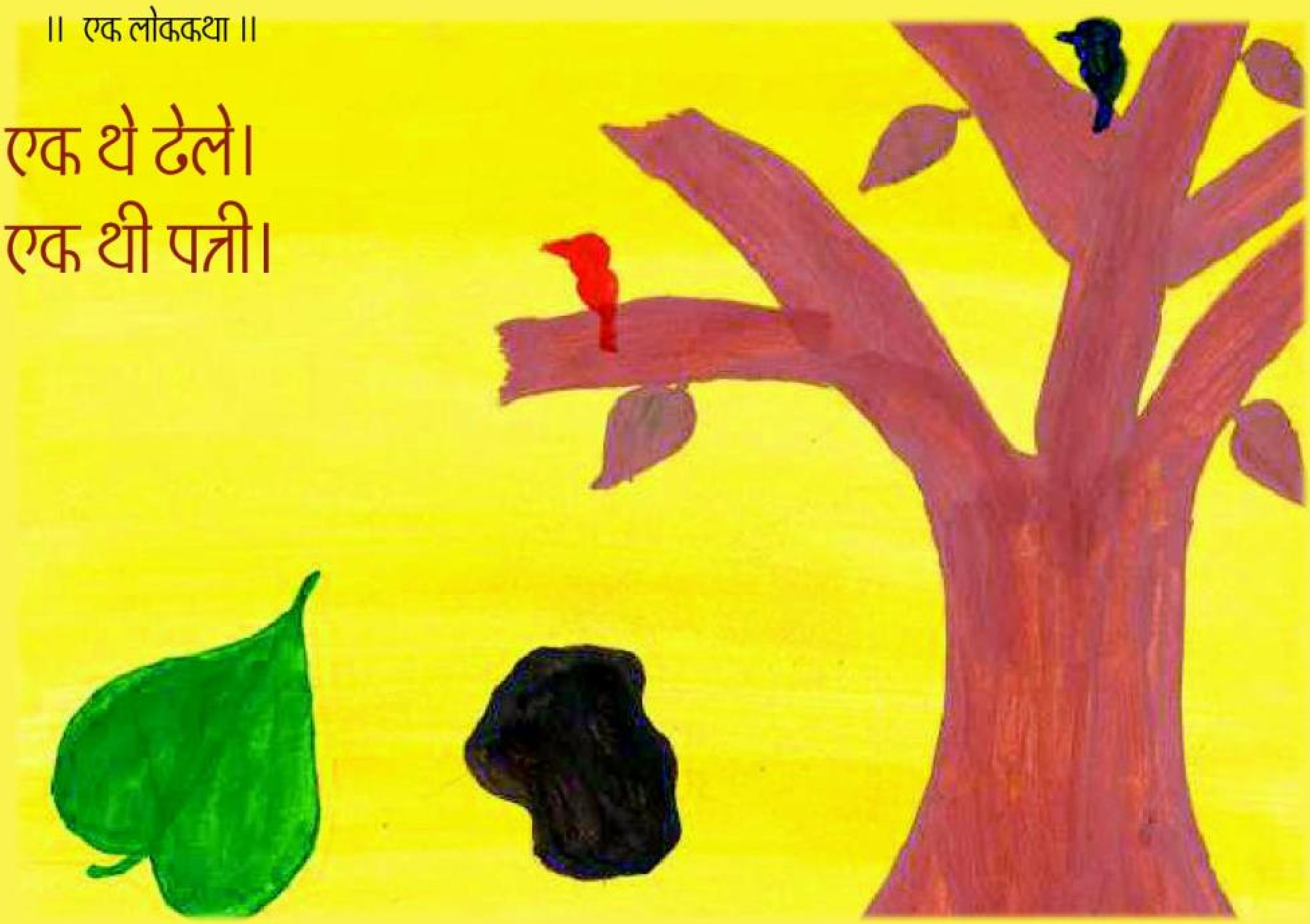

सभी चित्रः खुशी, आठवीं, सवाई माधोपुर

एक थे ढेले। मिट्टी के ढेले।
बड़े अकेले।

एक थी पत्ती। नाम था पतई।
पेड़ों से रूठ गई थी।
शाखों से टूट गई थी।

एक दिन ढेले को मिली पतई।
पतई को मिले ढेले।
दोनों दुखी।
दोनों अकेले।

पतई ने ढेले को निहारा। दुबारा-तिबारा।
फिर बोली, "कौन हो भाई ढेले?
गुमसुम-गुमसुम अकेले-अकेले।"

ढेले बोले, "मिट्टी का ढेला हूँ। खेतों में रहता हूँ।
फिर भी अकेला हूँ।"

"और तुम?" ढेले बोले।
"नाम मेरा पत्ती है, पेड़ों की हरियाली हूँ।
शाखों से झरकर फिलहाल खाली हूँ।"

और फिर दोनों बड़ी देर तक बातें करते रहे।

कई दिन गुज़र गए।
अब एक रात आती। एक रात जाती।
कभी ढेला पतई को खेत की कहानी सुनाता।
कभी पतई ढेले को परिन्दों की कहानी सुनाती।

एक दिन ज़ोर की आँधी आई।
पतई के पैर उखड़ने लगे।
ढेले पतई के ऊपर आकर बैठ गए।
आँधी ने भी ज़ोर लगाया।
ढेले जी अंगद-से पाँव जमाकर ऐंठ गए।

*अगर बारिश और
आँधी दोनों एक साथ
आ जाएँ तो क्या होगा?*

वे दोनों दुबारा बातों में लग गए। थोड़े
दिनों बाद काले-काले बादल छाए।
ढेले देख रहे थे ऊपर मुँह लटकाए।

बूँदें टपकीं टपटपटप ढेले के सिर पर।
पतई उचककर आ बैठी ढेले के ऊपर।

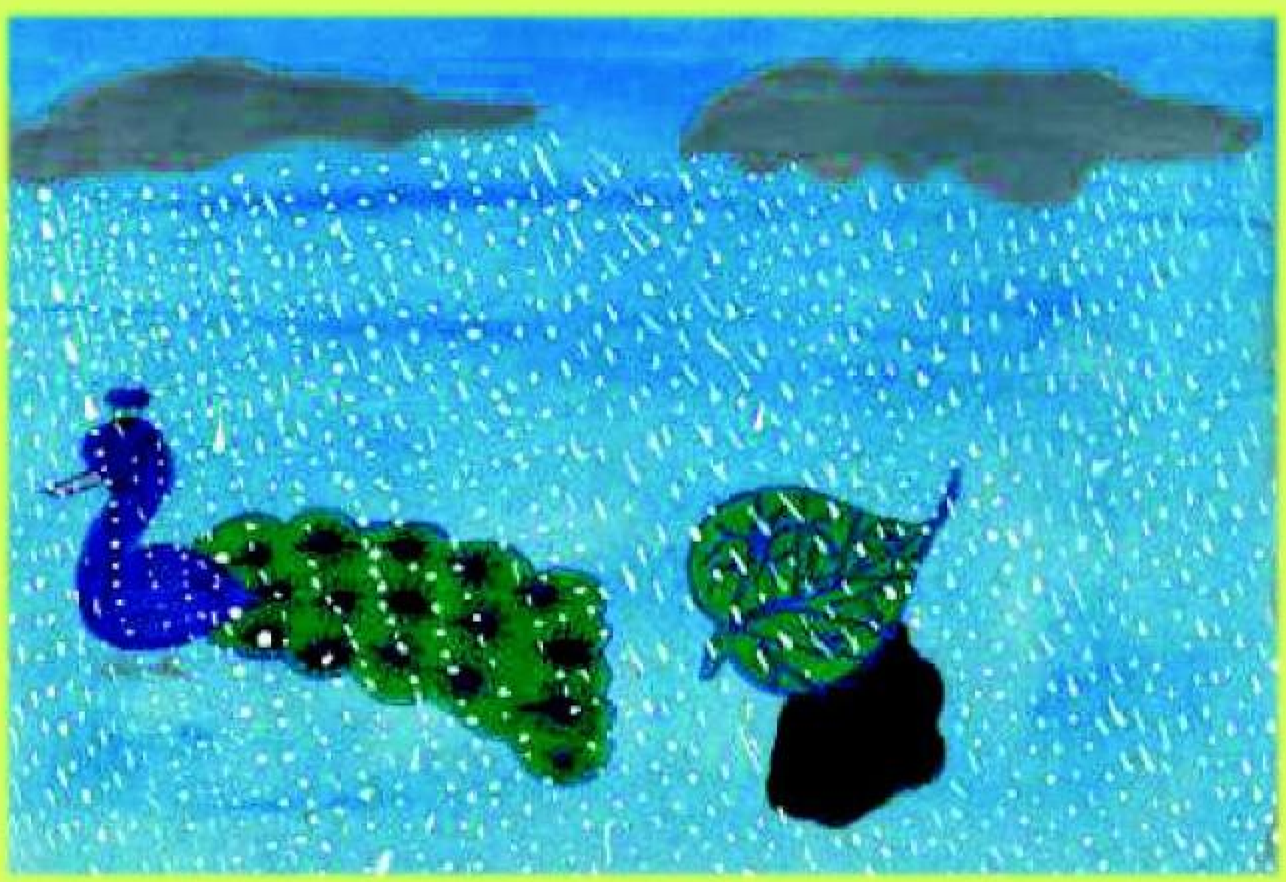

हो सकता है ढेले पतई कहीं मिल जाएँ
खेत या किसी कच्ची गली के दाएँ-बाएँ

कान लगाकर सुनना
उनके किस्से सारे
सुनते हैं ये पहुँच गए हैं गाँव तुम्हारे

मेरा पन्ना

—कोमल, सातवीं, के के अकेडमी स्कूल लखनऊ, उ. प्र.

नदी के उस पार के बबूल

जब मैं छुट्टियों में घर जाती हूँ, तो अकसर लकड़ी बीनने जाती हूँ। मुझे घर का काम बिलकुल अच्छा नहीं लगता। मगर लकड़ी बीनना मुझे बहुत पसन्द है। कभी-कभी हम अपने बा के साथ जाते हैं। बा बगुलों के लिए फन्दे लगाता। पर ज़्यादातर हम भाई-बहन ही जाते। हम घर का काम खत्म कर दोपहर को जाते हैं। बोरों को गोल कर हाथ के नीचे दबाते और नदी पार करते। नदी के पार किसानों ने बबूल के झाड़ लगा रखे हैं। हम गिरी पड़ी टहनियाँ जमा करते या फिर झाड़ पर चढ़कर सूखी टहनियाँ तोड़-तोड़ गिराते। हम मोटे डाल नहीं बीनते। किसान गुस्सा हो जाएँगे।

मैं पेड़ पर नहीं चढ़ती। डर लगता है। मेरी बहन देशमणी या प्रदयामणी चढ़ती हैं। या फिर मेरे मामा का लड़का – डूबा। बाकी बच्चे टहनियों को तोड़कर सीधे-सीधे जमाते और बोरे में भरते जाते। अगर कोई गिलौरी या चिड़िया आसपास आते तो हम उसके पीछे दौड़ते। मुझे दौड़कर पेड़ में छुपते गिलौरी बहुत सुन्दर लगते हैं।

जब हमारे बोरे भर जाते तो पेड़ के पास रखकर खेलते हैं। पकड़ा-पकड़ी में बहुत ही मज़ा आता है। पेड़ के चारों तरफ भागने में मज़ा आता है।

अगर पानी में खेलते हैं तो पजामा या सलवार घुटनों के ऊपर कर लेते हैं। एक-दूसरे पर पानी उछालते हैं। हम सबको ख्याल रखना पड़ता है कि सोनम चिढ़ नहीं जाए, अगर वो चिढ़ गई तो घर जाकर चुगली लगाती है। फिर खूब डाँट पड़ती है।

जब दिन गिरने लगता है, गोरू घर लौटने लगती हैं, तो हम बोरे सर पर रखकर घर लौटते हैं। भरे बोरे के साथ ध्यान से नदी पार करना होता है। थोड़ा ध्यान बँटा तो पानी में छपाक, टप-टप करते घर जाना पड़ता है। बोरा भी सर पर टपकता रहता है। हम पूरे बोरे भर लेते हैं। छोटे बच्चे छोटे-छोटे गट्ठर ले जाते हैं। लौटते समय हम जहाँ थक जाते वहीं रुककर साँस लेते हैं। पर ये बात पक्की है कि दिन रहते घर पहुँचना है। नहीं तो...

—विद्याभारती सिंह, पाँचवीं, अरण्यवास, भोपाल, म. प्र.

—मुस्तफा अहमद,
संस्कार वैली स्कूल
भोपाल, म. प्र

माथापच्ची

1 एक जैसे दो गिलास लो और उन्हें पानी से लबालब भर लो। एक गिलास में लकड़ी का टुकड़ा तैरा दो। अब दोनों में से कौन-सा गिलास ज़्यादा भारी होगा?

2 बिना अन्न पानी सदा
चलती आठों धाम।
धीरे-धीरे बोलती,
बूझो उसका नाम। (घड़ी)

- कहीं पहेली बीरबल,
अकबर को दियो सुनाय।
पक्के रहत बहुत दिन
बिन पके गल जाए। (मिट्टी का घड़ा)

(दोनों पहेलियाँ डीपीएस स्कूल पटना से प्राप्त हुई हैं।)

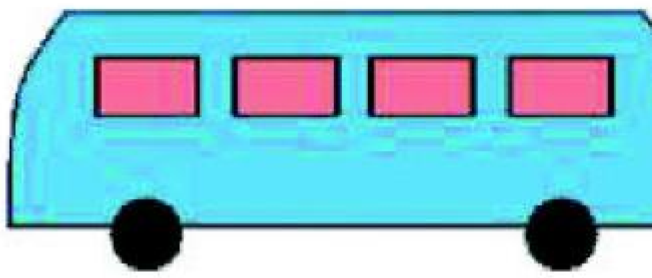

3 यह बस किस दिशा में जा रही है, दाईं या बाईं? तुमने यह किस आधार पर तय किया?

1 2 3 4 5 6 7 8 9 = 100

4 अंकों का क्रम बदले बिना इन्हें जोड़ व घटाने के चिन्ह के साथ इस्तेमाल कर इस समीकरण को सही बनाओ। ध्यान रहे तुम केवल तीन बार चिन्हों का इस्तेमाल कर सकते हो।

5 जानवरों व पक्षियों की कई प्रजातियाँ विलुप्त हो रही हैं। क्या तुम्हारे इलाके में भी कोई ऐसे जानवर या पक्षी हैं जो विलुप्ति की कगार पर हैं?

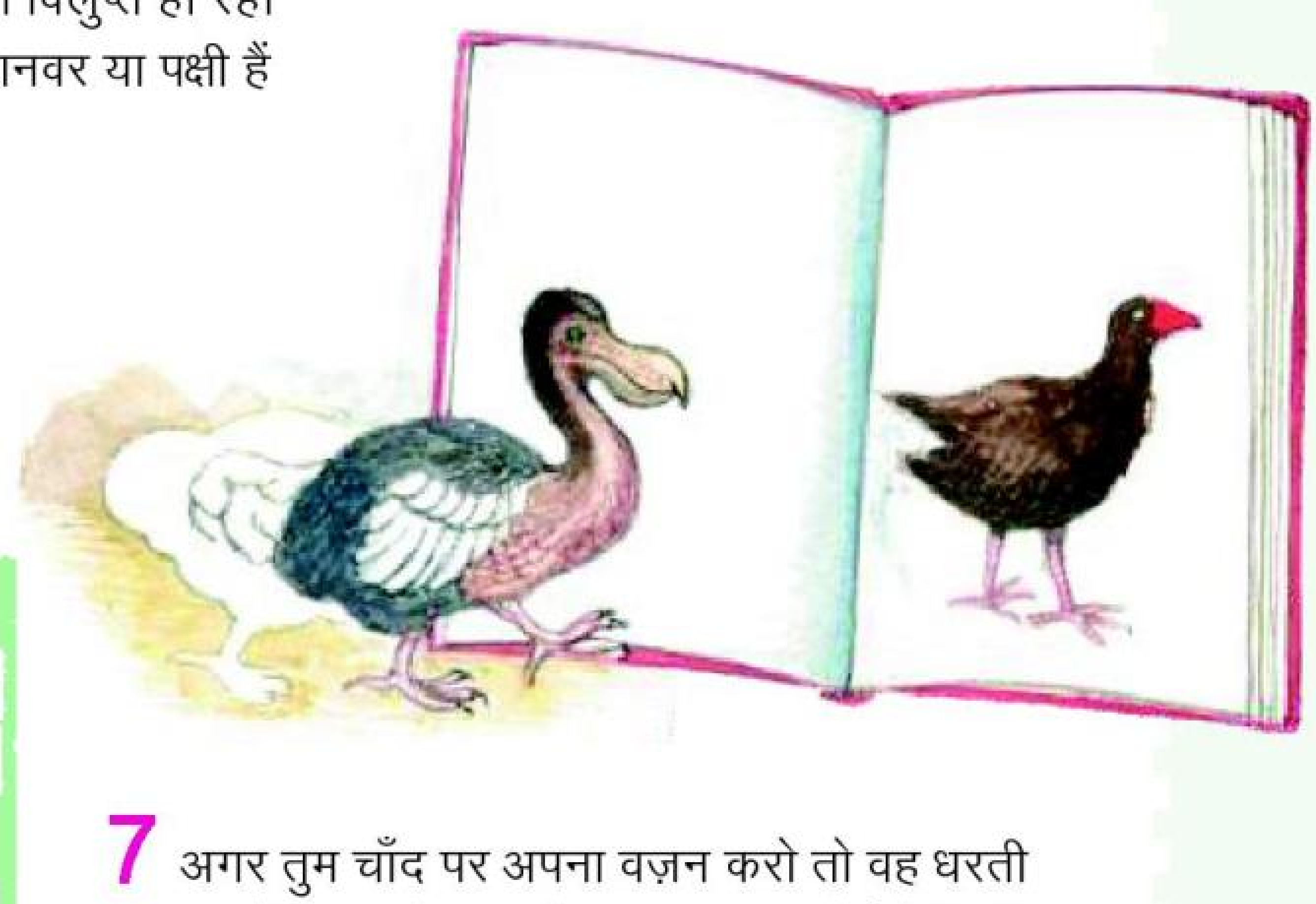

6 एक कागज़ को तुम ज़्यादा से ज़्यादा कितनी बार आधा मोड़ सकते हो?

7 अगर तुम चाँद पर अपना वज़न करो तो वह धरती पर तुम्हारे वज़न से कम होगा। क्या तुम कोई ऐसी चीज़ बता सकते हो जिसका वज़न धरती की बजाय चाँद पर ज़्यादा हो?

फरवरी की चित्र पहेली हल

कं	ब	ल			अ	ख	बा	र
प्यु			डो	सा		च्च		द्दी
ट	ह	नी		इ	मा	र	त	
र		ल		कि	ला		ह	ड्डी
		कं	का	ल		पं	खा	
	ग	ठ	री		ठे		ना	ला
कु	त्ता		ग	म	ला			हौ
म्हा		च	र	खा		बी	क	र
र	स्सी			ना	खू	न		

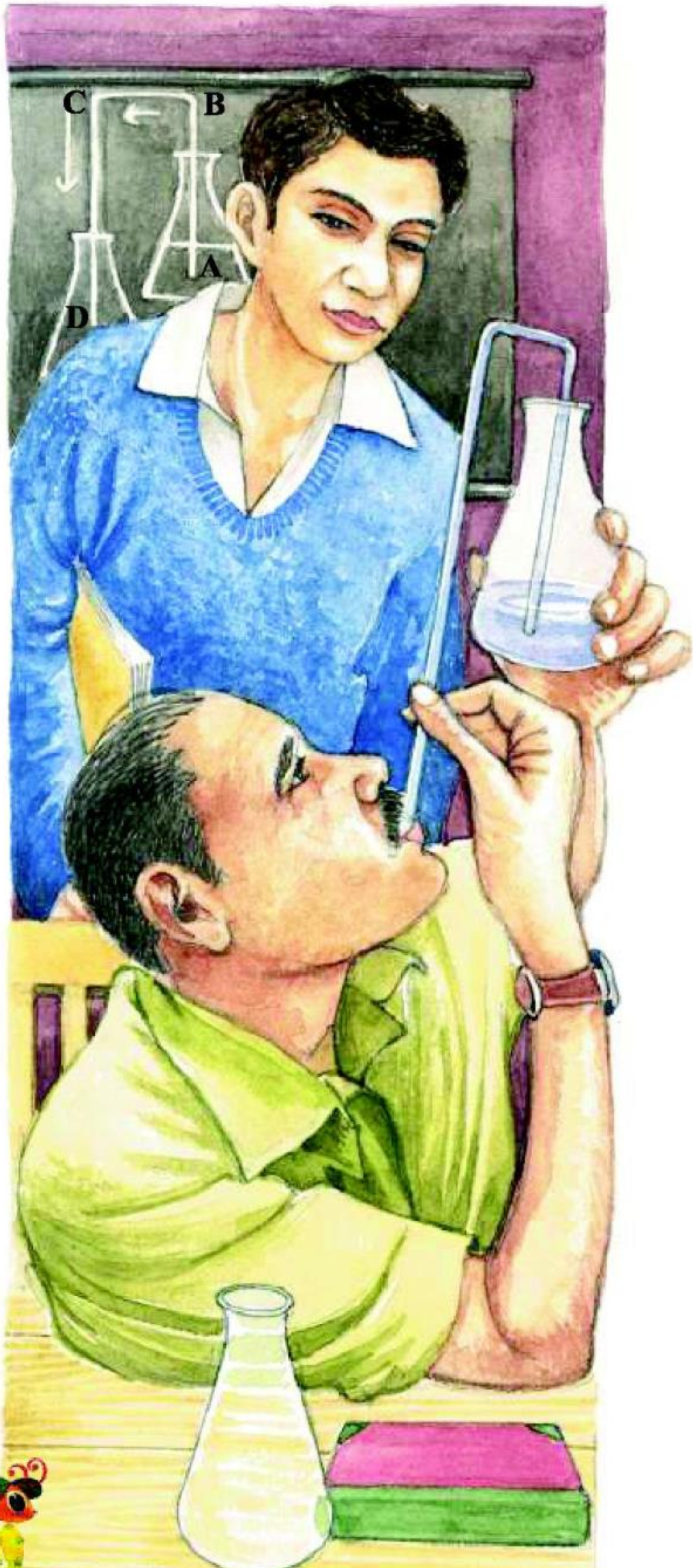

विज्ञान प्रयोगों का कमाल

जयन्त नार्लीकर

शायद उस समय मैं सातवीं-आठवीं में था। एक दिन विज्ञान पीरियड में शिक्षक कुछ सामान लेकर कक्षा में घुसे। किताब पढ़ने या फिर विज्ञान के किसी विषय पर एक-दो पन्ने लिखने की बजाय आज कुछ मज़ेदार देखने को मिलेगा यह सोचकर मैं बहुत खुश हुआ। मेरे सहपाठियों की खुशी भी उनके चेहरों पर साफ झलक रही थी।

हमारे गुरुजी ने मेज़ पर काँच के दो बीकर रखे। एक बीकर में पानी लाने के लिए एक छात्र को भेजा। फिर उन्होंने अपने थैले में से काँच की एक नली निकाली जो दो जगहों पर 90-अंश पर मुड़ी थी। उसका आकार अँग्रेज़ी के दो **L** अक्षरों को जोड़कर बना था (चित्र देखें)। चित्र में दिखाए अनुसार **AB** भुजा **CD** भुजा की तुलना में छोटी थी और बिन्दु **A** बिन्दु **D** से काफी ऊपर था।

चित्रः दिलीप चिंचालकर

पानी से भरे बीकर में **AB** को डुबोकर गुरुजी ने मुँह से **D** सिरे से हवा खींची जैसा कि लोग स्ट्रॉ से करते हैं। इससे पूरी नली पानी से भर गई। फिर उन्होंने **D** सिरे को अपनी उँगली से बन्द किया और कक्षा से पूछा, "अगर **D** से उँगली हटाई जाए तो क्या होगा?" हमने बिना गहराई से सोचे-समझे जवाब दिया, "**AB** में **A** और **CD** में **D** से पानी बाहर गिरेगा।" मुस्कराते हुए गुरुजी ने नली से अपनी उँगली हटाई। हमारे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। ऊपर के बीकर में से सारा पानी **A** से अन्दर जाकर **D** से बाहर निकला। मेज़ गीली न हो इसलिए गुरुजी ने **D** को एक खाली बीकर में रखा जिससे उसमें पानी इकट्ठा हो सके। पानी **A** से **B** तक कैसे चढ़ा? इस चमत्कार के पीछे के विज्ञान को गुरुजी ने बाद में विस्तार में समझाया। इस प्रक्रिया को "सायफन" कहते हैं यह भी उन्होंने बताया।

उत्तर मालूम होने के बावजूद मुझे यह एकदम अविश्वसनीय लगा और मैंने खुद इसका परीक्षण करने की ठानी। हमारे घर में बर्तन धोने और बाग-बगीचे में पानी देने के लिए ज़मीन से एक फुट ऊँचे चबूतरे पर एक पानी की टंकी रखी थी। काँच की नली की बजाय मैंने रबर की पाइप से "सायफन" शुरू किया। बिना किसी मेहनत से मैंने टंकी का लगभग सारा पानी खाली कर डाला। प्रयोग सफल रहा, इसका मज़ा ही कुछ और था। प्रयोग करके मैंने उसके विज्ञान को जिस गहराई से समझा उसे मैं पढ़कर वैसे नहीं समझता।

ज़मीन पर पानी के तालाब को देखकर मेरी माँ ने अपना माथा पीटा। घर के काम आनेवाले सारे पानी को मैंने बहा दिया था। मैं तो माँ को सिर्फ "सायफन" का मज़ा बताने गया था पर...

लँगड़ा गुड्डा की छलाँग

(पेज 14 का शेष भाग)

शाम को हिम्मत जुटाकर हम दूसरी तरफ से पंडिताने मोहल्ले की तरफ भी गए और होली का नज़ारा भी किया। उस कोने में अधजली लिटगिनियाँ और काली राख पड़ी थी। पानी डालने से राख वहीं जम गई थी। लगभग सारी लिटगिनियाँ जल चुकी थीं। आसपास झण्डियाँ सजाने का काम चल रहा था। किसी ने हमारी तरफ ध्यान नहीं दिया। हम शान से घूमते हुए सामने की तरफ से ही अपने घर की तरफ लौटे। थोड़ी देर अपनी होली के पास लकड़ियाँ वगैरह जमाते रहे फिर अँधेरा होते ही घर चले गए।

घर में खाना खाते समय बाबूजी ने मुझसे सीधे कहा, "कतुरिया ने देख लिया था लँगड़ा को आग लगाते। वो तो ये सोच के कि खामखा पंडिताने के लोग उसे मार-मार के अधमरा कर देंगे, उसने किसी को नहीं बताया। उसने सबको यही बताया कि जब लपट उठने लगी तब उसकी नज़र गई। लोगों का ये अन्दाज़ा है कि शायद किसी की फेंकी बीड़ी-सिगरेट से आग लगी है।" फिर मेरी तरफ देखकर बोले, "क्यों करते हो ऐसा काम? किसका आइडिया था ये? पुलिस की मार पड़ेगी तब समझ में आएगा।" मैं कुछ नहीं बोला चुपचाप खाना खाता रहा। फिर उठकर बिस्तर में दुबक गया।

दूसरे दिन का सवेरा कुछ अलग ही था। एकदम हलका-फुलका, शान्त, साफ सुथरा। सिल्लू अपने आँगन में मंजन कर रहा था और मैं अपने आँगन में। हम दोनों एक-दूसरे को देख पा रहे थे। हम हँस रहे थे। दोपहर में लँगड़ा गुड्डा घर से गुड़-तिली की पट्टी लाया। वहीं अपनी होली के पास बैठकर हम तीनों ने मज़े से खाई और भर-भर लोटा पानी पीकर वहीं लोट गए।

मेरा पसन्दीदा चित्र

चित्रों में आम बच्चे

अशोक भौमिक

पूरे विश्व के कला इतिहास में चित्रों में आम बच्चे कम ही दिखते हैं। पश्चिमी देशों की कुछ प्रचलित लोककथाओं, साहित्यिक कृतियों या धार्मिक कथाओं पर आधारित चित्रों में क्यूपिड, देव शिशु या राजपुत्र अवश्य दिख जाते हैं। भारतीय चित्रों में देवताओं के बाल रूप का वर्णन है। चित्रों में आम बच्चे और उनका बचपन हमें चित्तप्रसाद की यादगार चित्र-श्रृंखला "जिन फरिश्तों की कोई परिकथा नहीं" में नज़र आता है।

चित्तप्रसाद का जन्म 15 मई 1915 को हुआ था। बचपन से ही चित्रकला, संगीत और नाटक में उनकी गहरी रुचि थी। चित्तप्रसाद आम लोगों के चित्रकार थे। उन्होंने जीवनभर मज़दूरों, किसानों और आम लोगों के बीच रहकर ही काम किया।

"जिन फरिश्तों की कोई परिकथा नहीं" चित्र श्रृंखला चित्तप्रसाद ने 1952 में पूरी की थी। ये सभी लीनोकट शैली के प्रिंट चित्र हैं।

1952 में विएना में आयोजित विश्व शान्ति सम्मलेन में भाग लेनेवाले अतिथियों को भारत की ओर से भेंट के रूप में इन चित्रों के प्रिंट्स दिए गए थे। इसलिए कम समय में ही इन चित्रों को खूब प्रसिद्धि मिली।

चित्तप्रसाद की कला का सबसे मौलिक पक्ष उनके चित्रों के विषय हैं। चित्तप्रसाद ने मेहनतकश बच्चों को अपने कई अन्य चित्रों में बड़ी खूबसूरती से चित्रित किया है। "होटलवाला बच्चा", "बीड़ी मज़दूर बच्चे", "बूट पॉलिशवाला बच्चा" और फुटपाथ पर रहनेवाले बच्चों के चित्र।

"होटलवाला बच्चा" (चित्र 1) में होटल के बन्द हो जाने के बाद देर रात तक एक अकेले बच्चे को बर्तन धोते हुए दिखाया है। बच्चे की मजबूरी दर्शक को गहरे तक प्रभावित करती होगी। चित्र में बच्चे के पास जूठे बर्तनों का अम्बार-सा लगा है। रोशनी के नाम पर पास कुर्सी पर एक ढिबरी जल रही है। डर, रात के सन्नाटे में ढिबरी की तिरछी लौ और कुत्ते का भौंकना, माहौल को और उस बच्चे के अकेलेपन को और भी मार्मिक बना रहा है। पर इन सब से हट कर जो बात इस बच्चे के अकेलेपन और असहायपन को एक अलग गहराई प्रदान करती है वह है फर्श पर रेंगते तिलचट्टे!

"बूट पॉलिशवाला बच्चा" (चित्र 3) भी एक बेहद मर्मस्पर्शी चित्र है जो अपनी संरचना के लिए भी समान रूप से महत्वपूर्ण है। चित्तप्रसाद के अन्य चित्रों की तुलना में इस चित्र में विवरण सीमित हैं। चित्र के केन्द्र में एक बच्चा है जो अन्य चित्रों के बाल श्रमिकों की तुलना में काफी छोटा है। महज़ एक लोहे के खम्बे, कुली के ठेले और माल ढोने की टोकरी से हम जान पाते हैं कि बच्चा थककर जहाँ गहरी नींद में सो रहा है वह रेलवे प्लेटफॉर्म है। सोता हुआ

"बीड़ी मज़दूर बच्चे" (चित्र 2) में हम तीन बच्चों को बीड़ी बनाते हुए पाते हैं। कमरे में रोशनी के लिए केवल एक छोटी-सी खिड़की है जो वहाँ रखी चीज़ों को थोड़ा-बहुत रोशन करने के साथ-साथ एक घुटन भी पैदा कर रही है। इससे कमरे की सीलन तक को सहज ही महसूस किया जा सकता है। अपने काम में लगे तीनों बच्चों की लगन को उनकी मुद्राओं से आसानी से समझा जा सकता है। साथ ही उनकी कमज़ोर सेहत और पीठ की कूबड़ उनकी गरीबी और मजबूरी दोनों को रेखांकित कर रही है। तेन्दू पत्तों को एक आकार में काटने के लिए कई फर्मे और एक कैंची तीनों बच्चों के पास फर्श पर पड़ी है। एक अँगीठी भी है जिस पर रखी टीन की चौकोर चादर पर बीड़ी सेंकी जा रही है। इसी के पास तैयार बीड़ियों का गट्ठर है। इस चित्र को ध्यान से देखने पर हमारी नज़र उस हष्ट-पुष्ट चूहे पर जा पड़ती है जो मेज़ पर रखी बच्चों की रोटी पर दाँत गड़ा रहा है। प्रतीक के रूप में चूहा यहाँ कोई पहेली नहीं रचता है। इसलिए बच्चों की मेहनत की, लूट की करुण कहानी को दोहराता हुआ यह चित्र, कला की एक नई ऊँचाई को छू लेता है।

बच्चा नींद में भी अपने बूट पॉलिश के बक्से और ब्रुश के बारे में इतना सजग है कि उसने एक हाथ से बक्से को और दूसरे हाथ से ब्रुश को छू रखा है। बच्चे के सोने के अन्दाज़ में जिस मासूमियत को चित्तप्रसाद दिखाते हैं वह विषय के प्रति कलाकार के गहरे ममत्व के बगैर सम्भव ही नहीं है।

(शेष भाग पेज 42 पर)

जंगल में मोर नाचा, मैंने देखा

दिलीप चिंचालकर

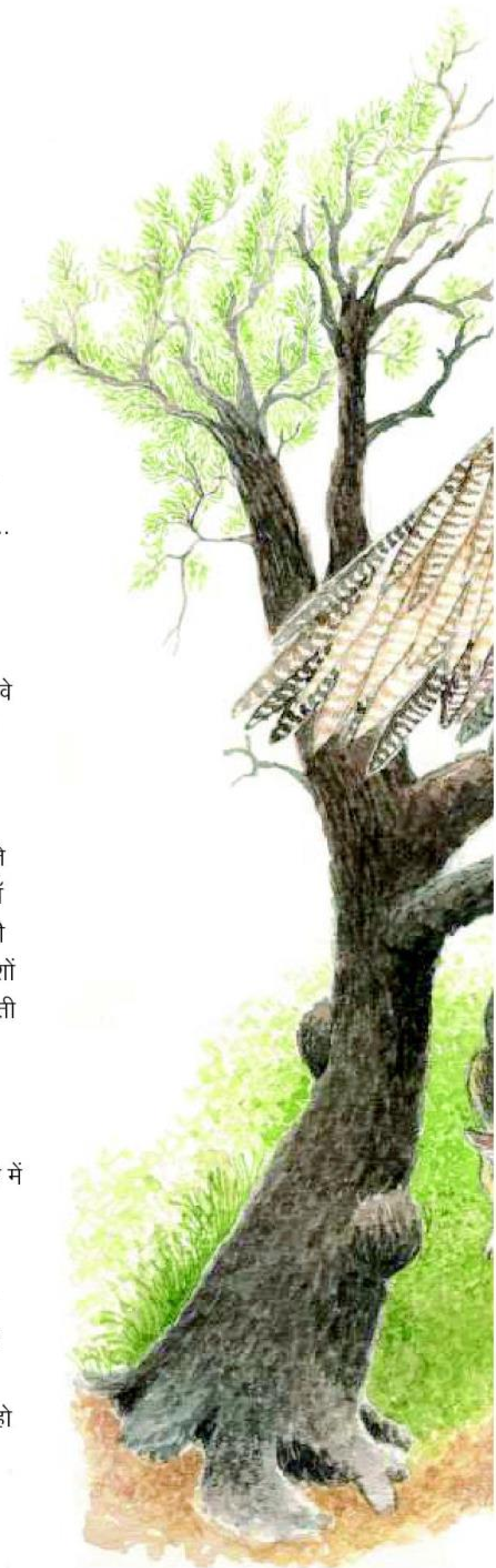

क्बाँक्!

अरे, यह आवाज़ कैसी?

यह तो सन् छप्पन की कोई बस लगती है! मेरे बचपन में शेवर्ले, डॉज, फार्गो कम्पनियों की ऐसी बसें हर कहीं चला करती थीं। कहीं भी बन्द पड़ जाना इनकी तबीयत में हुआ करता था। इन्हें आखिरी बार मैंने हाटपिपल्या और घाटाबिल्लोद जैसे गाँवों में देखा था। इनके पीतल के बिगुलनुमा भोंपू ऐसी ही आवाज़ करते थे...

क्बाँक्! फिर वही आवाज़!

लेकिन इस बबूल के जंगल में वह बस कैसे आ सकती थी! उस जमात की आखिरी बस की मिट्टी पलीद हुए भी पचास बरस से ऊपर हो चुके होंगे। जंगल किनारे के कच्चे रास्ते से सिर पर बोझा लादे कुछ औरतें और बच्चे गुज़र रहे थे। वे भी ठिठककर खड़े हो गए। फिर जंगल की ओर देख अपनी अनगढ़ बोली में कुछ कहने लगे।

क्बाँक्! आवाज़ हर दस सेकण्ड के फासले से आ रही थी।

मेरा घर शहर की बाहरी परिधि पर आता है। घर से तीन मिनट के पैदल रास्ते पर यह बबूल का जंगल है। लगभग आधा किलोमीटर चौरस। कुछ वर्ष पहले यहाँ जंगली खरगोश और सियार देखे हुए मुझे याद हैं। अब खुले छोड़े हुए शहरी प्राणी आवारागर्दी करते हैं। पक्षी अलबत्ता यहाँ बहुतेरे हैं – हुदहुद और धनेश भी। बारिशों में यहाँ खूब हरा और घना हो जाता है। दो तलैयाँ भर जाती हैं। तितलियाँ आ जाती हैं।

क्बाँक्!

हरियाली के कारण मोर भी इस तरफ काफी आ निकलते हैं। अब ध्यान में आया, यह आवाज़ मोर की ही थी। सुबह-शाम के झुटपुटे में और रात-बेरात अँधेरे में इनकी मियाँओं-मियाँओं की आवाज़ें आती ही रहती थीं, अब यह...

क्बाँक्!

मुझे मामले की जड़ तक पहुँचना ज़रूरी लगा। आगे मेरी अल्सेशियन बिटिया रैना और पीछे-पीछे मैं। हम झाड़ियों में घुस पड़े। हमारी आहट पाकर मोर चुप हो गया। थोड़ी देर ढूँढने के बाद वह हमें एक मझोले आकार के पेड़ पर बैठा दिख गया। वह मज़े में लग रहा था। ऐसा कोई कारण नहीं दिख पड़ा जिससे परेशान हो वह टेर लगाने लगे। हम निश्चिन्त हो लौट आए।

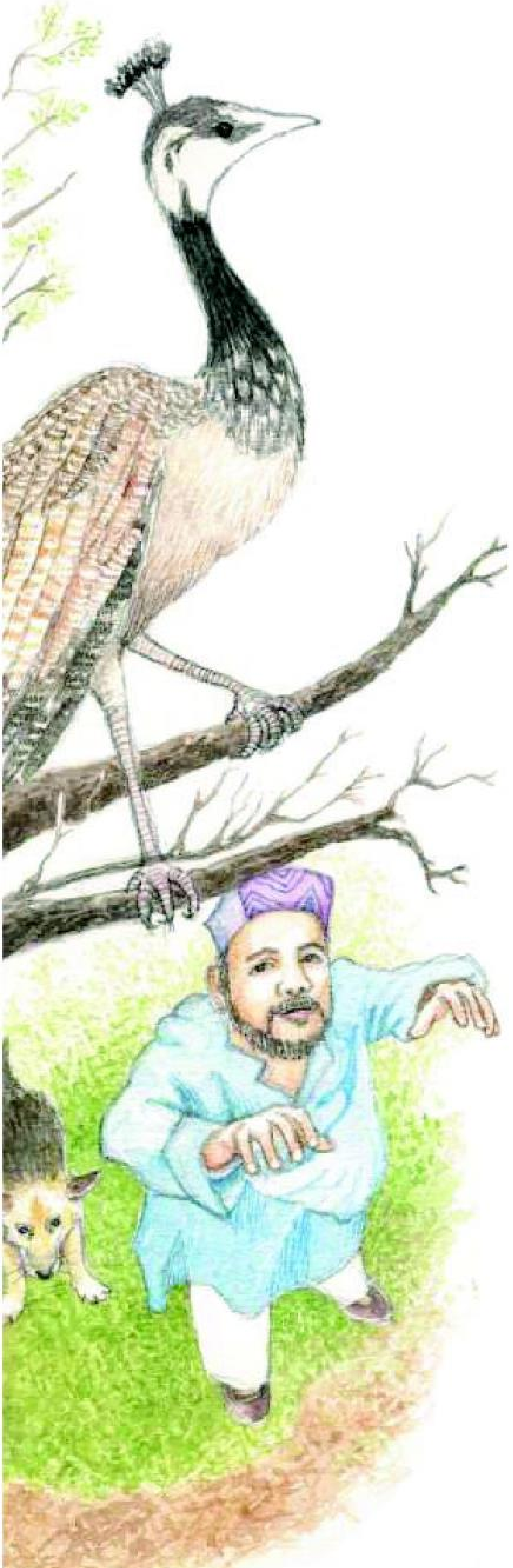

क्वाँक्!

जब भी हम जंगल का रुख करते, यह आवाज़ दूर से ही सुनाई दे जाती। पास में पहुँचने पर मोर चुप हो जाता। मैं उसके लिए भुने चने और मक्का के दाने ले जाता। अपनी लम्बी गर्दन पूरी अदाओं के साथ घुमा-घुमाकर वह यहाँ-वहाँ से हमें देखता रहता। हमारे निकल जाने के बाद मक्का-चने का चुग्गा बीन लेता होगा क्योंकि वहाँ मँडरानेवाले कौवों को ऐसे खाने में कोई दिलचस्पी नहीं थी।

बारिश के मौसम में घास के नीचे छुपे गड्ढों में पानी भरा होता है इसलिए हमने इधर आना बन्द कर दिया। मोर की आवाज़ कभी आती कभी नहीं आती। मोर पेड़ पर घोंसला बनाकर तो रहते नहीं हैं। वह भी कहीं आता-जाता होगा। एक दोपहर हम जंगल के बाहरी रास्ते से गुज़र रहे थे तो अचानक आवाज़ आने लगी...

क्वाँक्...क्वाँक्...क्वाँक्

मुझे उसमें घबराहट जान पड़ी। जैसे वह मुझे देखकर मदद की गुहार लगा रहा था। मैं और रैना उधर बढ़े। थोड़ा आगे जाने पर दिखाई दिया कि मोर एक निचली डाली पर बैठा पंख झपका रहा है। तीन-चार आवारा कुत्ते उसे पकड़ने की ताक में कूद-फाँद मचा रहे हैं। आसपास के पेड़ों पर बैठे कौवे तमाशा देख रहे हैं। हमारे पहुँचते ही आतताई और तमाशबीन बिखर गए। पास से देखने पर पता चला कि मोर का एक पंजा दो पतली टहनियों के चिमटे में अटक गया था। मैं कुछ कठिनाई से पेड़ पर चढ़ पाया। मोर का पंजा खासा मज़बूत था मगर टहनी की रगड़ खाकर ज़ख्मी हो गया था। फिर भी जैसे-तैसे निकल ही आया। पकड़ से छूटते ही मोर ऊपरवाली डाल पर जा बैठा। अब वह ठीक था। उसे अपना खयाल रखने का कहकर हम चले आए।

सप्ताह भर बाद मैं सिविल लाइंस से सुबह की सैर पर जा रहा था। अचानक वही आवाज़ सुनाई दी क्वाँक्...क्वाँक्...क्वाँक्। जज साहब के अहाते में खड़े सेमल की ऊपरी शाख से यह आवाज़ आई थी। मेरे मन ने कहा कि यह वही मोर है। शायद उसने मुझे पहचान लिया है। पहचान के पक्षी आपस में जो भी कहते होंगे, मोर वही बात मुझसे कह रहा है। मैंने उस ओर देख हाथ हिलाते हुए जवाब दिया – क्वाँक्...क्वाँक्! दरवाज़े पर खड़ा वर्दीधारी अर्दली चौंककर मुझे घूरने लगा।

इसके बाद अजनबियों का मुझे घूरने का सिलसिला ही चल पड़ा। वह मोर जब भी कहीं मुझे देख लेता, सरे राह क्वाँक्...क्वाँक्...क्वाँक् की बौछार शुरू कर देता। और तब तक नहीं रुकता जब तक मैं भी हाथ हिलाकर उसे क्वाँक्...क्वाँक् नहीं कहता। दूसरे राहगीर पलटकर मुझे देखने लगते।

एक दिन स्कूल बस के लिए खड़े एक बच्चे को अपनी माँ से कहते हुए सुना – वो मोरवाले चचा हैं।

चित्रः दिलीप चिंचालकर

एर्विकुलम की चिड़िया

वरुण ग्रोवर

चिड़िया को पता चल गया था।
जैसे ही हमने कहा, "वो वाली नहीं दिखी..."
पता नहीं कैसे,
लेकिन उसने जान लिया था।

हमने उसकी फोटो देखी थी,
एर्विकुलम नैशनल पार्क में घुसने से पहले,
गेट के पास वाले म्यूज़ियम में,
जिसमें थीं उन चार खास चिड़ियों की फोटो,
जो पार्क के अन्दर दिखती हैं।
दिखेंगी ही, इसकी कोई गारंटी नहीं थी,
क्योंकि चिड़ियों से अब तक
किसी ने,
पकड़ के, बिठा के,
कागज़ पर छपवा के,
कहीं अँगूठा नहीं लगवाया था।
और चिड़ियों का अँगूठा,
होता भी कहाँ है?

बादलों से ढँके नीलगिरी पहाड़ थे उस दिन,
और ताज़ा सन्तरे के ताज़ा छिलकों को मोड़ने से
जैसी फुहार निकलती है,
वैसी बरसात थी,
और हवा थी, जुलाई के महीने में भी,
15 दिसम्बर जैसी ठण्डी।

चित्रः दिलीप चिंचालकर

फिर भी हम चले जा रहे थे, अन्दर ही अन्दर,
ऊपर ही ऊपर,
एर्विकुलम नैशनल पार्क में,
देखने नीलगिरी पहाड़ की मशहूर नीलगिरी बकरी,
(जिसका स्थानीय नाम "तार" है),
जो हमेशा ऐसे शान से खड़ी होती है,
अगले दो पैर किसी ऊँचे पत्थर पर टिकाकर,
जैसे कोई ब्रिटिश शिकारी हो,
फोटो खिंचवाता हुआ,
शेर को मारने के बाद।

और उसकी खाल,
इतनी नवाबी,
इतनी चमकीली और मुलायम,
जैसे चैरी की बूट-पॉलिश से,
सुबह ही उसे चमकाया हो,
उसके आज्ञाकारी बच्चों ने।

हम अन्त तक गए,
जहाँ तक सरकार जाने देती है हमारे देश की,
"तार" को देखते, उनको आशीर्वाद देते,
यूँ ही चट्टान-दर-चट्टान कूदते रहने का,
क्योंकि आशीर्वाद चाहिए उन्हें,
कम बचे हैं बहुत।

टहलते रहे,
और ढूँढते रहे वो हर एक चिड़िया,
जिसकी फोटो हमने देखी थी नीचे म्यूज़ियम में।

पहले दिखी, हरी वाली, नन्ही-सी,
नीलगिरी फ्लाई-कैचर,
फुदकती-सी उड़ान भरती हुई।

फिर देखी काली-सफेद दुबली-सी,
विसलिंग (सीटियाबाज़) थ्रश नाम था जिसका,
रोज़ सुबह मन्नार के हमारे होटल के लॉन में,
यह इतनी मीठी सीटी बजाती थी,
जैसे बजा रही हो,
सिर्फ खुद के लिए।
फिर आधे रास्ते उतरकर,
एक और दिख गई उन चार में से।

लम्बी चोंचवाली, स्याह काली,
जो उड़ती कम थी,
और डाल पर, बिजली की तार पर, पत्थर पर,
पंख पूरे फैलाकर बैठती ज़्यादा थी।
मानो उन्हें हवा में सुखा रही हो,
या कह रही हो बाकी की दुनिया से,
आओ यार, गले लगा लो!

अब सिर्फ एक बची थी,
नीलगिरी लाफिंग-थ्रश नाम था जिसका,
(केरल की हँसनेवाली चिड़िया)
इसे थोड़ी-सी मोटी होना था,
और गर्दन के नीचे से भूरी।

और जैसे ही हमने कहा,
“वो वाली नहीं दिखी...”
पता नहीं कैसे,
लेकिन उसने जान लिया था।

क्योंकि ठीक उसी वक्त,
बस “दिखी” के “खी” की ई की मात्रा अभी
हवा में लहरा ही रही थी,
कि लाफिंग-थ्रश ने दर्शन दिए।
लाफिंग थ्रश प्रकट हुई।
लाफिंग थ्रश हमारे सामने उगी!

हमारी साँसें थोड़ी चुप हुईं,
आवाज़ एकदम बन्द,
और कदम हम ऐसे रखने लगे,
जैसे आसपास छोटे बच्चे सो रहे हों।

और देखते रहे लाफिंग-थ्रश को,
डाल से डाल फाँदते हुए,
करते चले उसका पीछा।

उतनी ही सुन्दर थी,
जितनी होती हैं सृष्टि की सबसे पुरानी चीज़ें,
और उतनी ही अदा वाली,
जितना होना चाहिए एक मशहूर चिड़िया को।

सधे कदम बढ़ाते थे हम,
कि कहीं बिदक ना जाए,
हमारी चौथी चिड़िया,
जिसे पता चल गया था,
कि हमने बुलाया है उसे,
और वो हाज़िर हुई है...

उतर रही थी ढलान,
हमारी ही तरह वो,
बस हम चलते थे सड़क पर,
वो पेड़-झाड़ी-पेड़ चलती थी...

थोड़ी देर में आ गई एक और,
फिर एक और,
तीन हो गईं,
और तीनों अब बढ़ रही थीं,
खो-खो खेलते हुए आगे,
और हम हैरान-खुश से,
अपने सौभाग्य गिन रहे थे...

बड़ी दूर तक साथ चली,
लाफिंग थ्रश नीलगिरी की।
हर कोण से अपना सौन्दर्य दिखाया,
और हर लम्बाई की उड़ान।

चिड़िया-दे और बन्दा-ले का खेल,
जब हमने मान लिया सहज,
तब मुँह से निकला मेरे,
“पर यह हँसी नहीं अब तक... नाम तो
लाफिंग थ्रश है?”

ठीक उसी वक्त
“है” का “ऐ” हवा में तैरता होगा अभी,
गायब हो गई,
अदृश्य!
और ना दिखी दोबारा।

पता नहीं कैसे,
चिड़िया को एक बार फिर,
पता चल गया था!

अन्तरिक्ष केन्द्र में एक दिन

*अन्तरिक्ष यात्री गैरेट रेसमैन के अन्तर्राष्ट्रीय अन्तरिक्ष केन्द्र (**International Space Station - ISS**) में बिताए दिनों की वीडियो रिपोर्ट की **विवेक सोले** द्वारा प्रस्तुति...*

वैसे अन्तरिक्ष में पृथ्वीवाले एक दिन को एक दिन कहना थोड़ा भ्रम पैदा करता है। वो इसलिए कि **ISS** 24 घण्टे में 15 से ज़्यादा बार पृथ्वी की परिक्रमा करता है। तो इस हिसाब से वहाँ 24 घण्टे में 15 बार सूर्योदय व सूर्यास्त होता है... यानी 15 दिन। पर चलो आसानी के लिए हम इसे ग्रीनविच मध्याह्न समय **(Greenwich Mean Time)** के अनुसार **ISS** में बिताया एक दिन ही मानते हैं...

मैं वहाँ पहुँचा कैसे?

ISS में मैं कब-क्या-क्या करता था यह बताने से पहले यह जान लो कि मेरा वहाँ जाना हुआ कैसे! बड़ा ही मज़ेदार रहा! तुमने कभी डिज़नीलैंड में या ऐसे ही किसी जगह में एक खास तरह के झूले में सवारी की है? (इन मोशन सिम्युलेटर झूलों में सवार व्यक्ति को पूरी तरह से ढँककर कोई फिल्म दिखाई जाती है। और उसकी सीट सामने दिख रहे दृश्य के हिसाब से घूमती, काँपती और झुकती है।) यहाँ पहुँचते वक्त यान में जो आवाज़ें, जो कम्पन होती है वो उन झूलों से अलग नहीं होती। फर्क बस इतना है कि यहाँ हमें मालूम होता है कि हम सच में अन्तरिक्ष में पहुँचाए जा रहे हैं। इसके अलावा एक बड़ा फर्क है – अन्तरिक्ष में जाते वक्त हम पृथ्वी की तुलना में लगभग तीन गुना गुरुत्वाकर्षण बल महसूस करते हैं। हाँ, यह सही है कि हवाईजहाज़ में भी हम लगभग 3-4 गुना या इससे भी ज़्यादा गुरुत्वाकर्षण बल महसूस करते हैं। लेकिन ऐसा सिर्फ कुछ ही सैकेण्डों के लिए होता है जब टेक ऑफ करते वक्त हवाईपट्टी पर जहाज़ को लगभग 300 किलोमीटर प्रति घण्टे की रफ्तार से दौड़ाया जाता है। उस वक्त सवार पीछे की ओर दबाव महसूस करता है जो सामान्य गुरुत्वाकर्षण बल से 3-4 गुना ज़्यादा होता है। यानी अपना वज़न सामान्य से लगभग 3 गुना ज़्यादा महसूस होना। पर अन्तरिक्ष यान में तो यह चलता ही जाता है, चलता ही जाता है...पूरे साढ़े 8-9 मिनट तक। और फिर अचानक इंजिन बन्द हो जाता है और हम 3 गुना गुरुत्वाकर्षण से शून्य गुरुत्वाकर्षण में पहुँच जाते हैं। और सच में तब लगता है जैसे हम अपनी सीट से फिकाए जा रहे हैं। यान में अन्तरिक्षयात्री सीधे बैठने की बजाय लेटी अवस्था में बैठे रहते हैं।

अन्तरिक्ष में पहुँचकर तो जैसे दुनिया ही बदल जाती है। यहाँ चलना उड़ने जैसा है। वैसे ही जैसे सुपरमैन उड़ता है। वैसे तो सही दिशा में आगे बढ़ने के लिए सावधान रहना पड़ता है। तुम्हें भी लगता होगा, है ना? पर अन्तरिक्ष में इससे भी ज़रूरी बात यह होती है कि हमें रुकना कहाँ है! ऐसा इसलिए क्योंकि यह अन्तरिक्ष स्टेशन बहुत बड़ा है। एक फुटबॉल के मैदान जितना...

वैसे तो अन्तरिक्ष केन्द्र पर एक गुम्बदनुमा छतवाली जगह है जिसमें सात खिड़कियाँ हैं। इनसे बाहर का अदभुत् नज़ारा दिखाई देता है। हम कई सारे दूसरे अन्तरिक्षयात्रियों से कहते हैं कि यहाँ से उतना ही अच्छा दिखाई देता है जैसा कि अन्तरिक्ष में चलने से दिखता है। लेकिन हम जानते हैं कि ऐसा हम सिर्फ उन लोगों से कहते हैं जिन्हें अन्तरिक्ष में चलने का मौका नहीं मिलता। अन्तरिक्ष में चलने की तो बात ही कुछ और है...

अन्तरिक्ष केन्द्र बहुत ही बड़ा होता है – विशाल और अद्भुत। लोग अकसर पूछते हैं, "तीन महीनों तक **ISS** की उस तंग-सी जगह में रहना बड़ा मुश्किल रहा होगा?" पर सच बताऊँ मुझे ऐसा कभी नहीं लगा। कभी-भी नहीं। बल्कि वह तो इतना बड़ा है कि दो दफा मुझे अपने एक साथी को ढूँढने के लिए दो बार यान के चक्कर काटने पड़े – मैं उसके एक सिरे से दूसरे सिरे तक चलता चला गया। वहाँ रहना सच में एक असाधारण अनुभव था। और फिर खिड़की से दिखती पृथ्वी, उसके नज़ारे! वाह, क्या मस्त बीते वो तीन महीने!

वहाँ यान से अलग किए जा सकने वाले दो हिस्सों (ज़वेड्ज़ा और हार्मोनी मॉड्युल) में दल के हर सदस्य के रहने के लिए क्वाटर बने हैं। ये एक छोटी-सी खिड़कीवाले छोटे कमरे हैं जिनसे आवाज़ बाहर नहीं जा सकती है। हम वहाँ स्लीपिंग बैग में सोते थे। गाने सुनते थे। लैपटॉप इस्तेमाल करते थे। अपना सामान एक बड़ी-सी दराज़ में या दीवारों से लगी जालियों में रखते थे। वहाँ आइना, पढ़ने के लिए लैम्प और एक अलमारी भी होती थी। यानी ज़रूरत का सारा सामान मिल जाता था।

पर खैर अब बात करते हैं 7 मई 2008 की सुबह की जब मैं सोकर उठा। सुबह के 6 बज रहे थे। **ISS** में आमतौर पर दिन हमेशा ही व्यस्त होता है। तो सोचा सबसे पहले दैनिक कामों से फारिग हो लिया जाए।

वहाँ शौचालय हवा के दबाव से संचालित होते हैं। जो काम पृथ्वी पर गुरुत्वाकर्षण करता है वो वहाँ एक पंखा करता है। पेशाब शौचालयों में स**SSSSS**क से सोख ली जाती है और एक डिब्बे में इकट्ठी होती जाती है। वहाँ के सारे अपशिष्ट को वहीं पर रीसाइकल कर पीने योग्य बनाया जाता है। इस के लिए **ISS** में एक छोटा जल उपचार संयंत्र भी होता है।

ठोस अपशिष्ट इकट्ठा करने के लिए शौचालय में प्लास्टिक के थैले रखे होते हैं। थैले में मौजूद छोटे-छोटे छेद से हवा सोख ली जाती है। सारा अपशिष्ट थैले में इकट्ठा हो जाता है और उसका मुँह एक रबर से अपने आप बन्द हो जाता है। इस थैले को एक छेद के ज़रिए एक एल्यूमीनियम के डिब्बे में डाल दिया जाता है और अगले व्यक्ति के लिए इस थैले की जगह एक नया थैला रख दिया जाता है।

शौचालय हवा के दबाव से संचालित होते हैं

अन्तरिक्ष में मँजन करना लगभग वैसा ही है जैसा पृथ्वी पर होता है। बस आखिर में थोड़ा अलग हो जाता है। गिरने पर पानी गोल गेंदों में बदल जाता है। इसलिए यहाँ कोई सिंक नहीं होती जहाँ टूथपेस्ट की झाग थूकी जा सके। इसलिए इसे निगल लिया जाया जाता है। वहाँ का टूथपेस्ट निगलनेवाला ही होता है। वैसे बचपन तो मेरा पृथ्वी पर ही गुज़रा है मैं तो यहाँ भी काफी सारा टूथपेस्ट निगल जाया करता था।

मँजन करने के बाद लगा आज बाल काट लिए जाएँ। बहुत बढ़ गए थे। मेरे रूसी साथी सेरगई ने इसमें मेरी मदद की। बाल काटनेवाली वहाँ की कैंची आमतौर पर इस्तेमाल होनेवाली कैंची जैसी ही होती है। बस वो एक वैक्यूम पम्प से जुड़ी होती है जो सारे कटे हुए बालों को अन्दर खींच लेता है। अब बारी नहाने की थी। नहाने के लिए यहाँ पानी के जेट और गीले नैपकिन का इस्तेमाल होता है। साबुन टूथपेस्ट की ट्यूब जैसी ट्यूब में होता है।

वहाँ काम बहुत रहते थे। और सारे काम तय समय पर ही होने होते थे। जैसे दैनिक कामों से निपटाकर सबसे पहले स्टेशन का रखरखाव करना होता था और फिर नाश्ता। इसके बाद मिशन को नियंत्रित करनेवाली टीम के साथ पूरे दल की कॉन्फ्रेंस होती थी। इसमें दिनभर के कामों की योजना बनती थी। सुबह 8.10 तक काम शुरू हो जाता जो 1 बजकर 5 मिनट तक लगातार जारी रहता। हाँ, इस बीच रोज़ की कसरत भी होती। दोपहर में एक घण्टे का लंच ब्रेक होता है। उसके बाद फिर से बहुत सारी कसरत और काम।

लगा आज बाल काट लिए जाएँ

नाश्ते का वक्त हो गया था। मैं रूसी खण्ड की ओर बढ़ चला। नाश्ता वहीं मिलता था। मेरे साथी सेरगई ने अपने खाने के पैकेट से निकालकर नाश्ता करना शुरू कर दिया था। मैंने खाने के बक्से में से अण्डे की भुर्जी निकाली। और एक दूसरे बैग से सॉस निकाला। अण्डों से पानी निकाल लिया जाता था और वे एक प्लास्टिक की थैली में बन्द थे। थैली में थोड़ी कॉफी भी थी। मैंने थैली को सीधे मुँह से लगाकर चूस लिया। चम्मच से खाओ तो खाने के टुकड़े इधर-उधर उड़ने लगते हैं और सब कुछ गन्दा हो जाता है। सेरगई ने कोई गाना चला रखा था। मुझे उसकी पसन्द के गाने अच्छे लगते थे।

नाश्ते के बाद अब काम पर लगने का समय था। मिशन को नियंत्रित करनेवाली टीम के साथ पूरे दल की कॉन्फ्रेंस होती थी। इसमें दिनभर के कामों की योजना बनती। हर सुबह मुझे पृथ्वी से नियंत्रण करनेवाली टीम से निर्देश मिलते कि आज मुझे क्या-क्या करना है। सारे काम लैपटॉप की स्क्रीन पर आ जाते। कामों के साथ-साथ यह भी बताया जाता कि उन्हें कितने समय में पूरा करना है। सभी को इसे मानना ही होता।

उस दिन का मेरा एक काम था मिस्र की तस्वीरें लेना। मैंने अपनी घड़ी में उस समय का अलार्म लगा दिया जब ISS मिस्र की तटरेखा पर होगा और तस्वीरें लेने के लिए सूर्य बिलकुल ठीक जगह में होगा। जल्दी ही जापानी लैब मॉड्युल को लेकर एक अन्तरिक्ष यान आनेवाला था। मुझे इसके लिए बहुत सारी तैयारियाँ करनी थी। हवा को साफ करने के लिए लगे फिल्टर भी साफ करने थे।

वहाँ हमें अपने लिए ज़्यादा समय नहीं मिलता था। चूँकि उस वक्त हम अन्तरिक्ष केन्द्र के निर्माण के चरम स्तर पर थे इसलिए लगभग हर दस दिन में वहाँ एक अन्तरिक्ष यान आता था। इतने सारे काम थे इसलिए समय से सोना हो ही नहीं पाता था।

अचानक हाथ पर बँधी घड़ी का अलार्म बज उठा। मिस्र की तटरेखा की तस्वीरें खींचने का समय हो गया था। वहाँ बहुत सारे कैमरे और ज़ूम लैंस थे। मैंने खिड़की से देखा – मटमैली रेत के बीच नील नदी चमकती नीली-सी लग रही थी। बेहद सुन्दर।

मुझे ISS में लगे हवा के बहाव को नापनेवाले यंत्र को भी जाँचना था। इस बड़े-से स्टेशन में ताज़ी हवा बहती रहे, यह ज़रूरी था। हम सीधे खिड़की खोलकर ताज़ी हवा तो नहीं ले सकते ना! यहाँ रखी टंकियों से दाबानुकूलित ऑक्सीजन व नाइट्रोजन ट्यूब द्वारा ISS में आती है और स्टेशन के सब कोनों से हवा को ले जाती है ताकि उसमें से कार्बन डाइ ऑक्साइड को अलग किया जा सके। इसके बाद साफ हवा को वापिस भी लाती हैं। किसी भी कोने में हानिकारक गैस ना रहे यह सुनिश्चित करने का काम नलियाँ ही करती हैं।

विभिन्न छेदों से निकलनेवाली हवा की गति नापना मेरे ज़िम्मे था। अरे, एक नली निकली पड़ी थी! मैंने उसे ठीक किया। हवा साफ करनेवाले फिल्टरों की भी समय-समय पर सफाई बहुत ज़रूरी होती है। सोते समय अन्तरिक्ष यात्री के आसपास हवा का बहाव बहुत महत्वपूर्ण होता है। वरना अगर सोते समय साँस द्वारा छोड़ी गई हवा से उसके आसपास कार्बन डाइ ऑक्साइड का बुलबुला बन गया तो आफत आ सकती है। केन्द्र को ज़्यादातर ऑक्सीजन विद्युत अपघटन (Electrolysis) की प्रक्रिया से मिलती है। इस प्रकिया में ISS के सौर पैनल की बिजली का इस्तेमाल कर पानी से ऑक्सीजन व हाइड्रोजन गैसें अलग की जाती हैं।

उस दिन का मेरा एक काम था मिस्र की तस्वीरें लेना

काम बहुत हो गया था उस दिन। दोपहर के एक घण्टे के लंच ब्रेक का टाइम हो गया था।

एक बार फिर हमने प्लास्टिक बैगों को दबाकर खाना और पेय पदार्थ निकाले। यान में ज़्यादातर खाना हवारहित प्लास्टिक की थैलियों में पैक होता है। आमतौर पर संरक्षित खाने को यहाँ पसन्द नहीं किया जाता है। बहुत ही कम गुरुत्वाकर्षण वाले वातावरण में इनका स्वाद बिगड़ जाता है। खाने को स्वादिष्ट बनाने की कई कोशिशें होती हैं। जैसे ज़्यादा मसालों का इस्तेमाल किया जाना। हमें पृथ्वी से ताज़े फल और सब्ज़ियाँ लानेवाले अन्तरिक्ष यान का बहुत इन्तज़ार रहता था। सभी के अलग-अलग खाने के पैकेट होते थे। हम रसोई में अपने लिए खाना पकाते। वहाँ खाना गर्म करने के उपकरण हैं। पहले वहाँ फ्रिज नहीं होता था पर 2008 में वहाँ एक फ्रिज और गरम व ठण्डा दोनों तरह का पानी देनेवाला एक यंत्र लगाया गया है। पेय पदार्थ सूखे पाउडर के रूप में होते हैं। इन्हें पानी में घोलकर पीना होता है। पेय पदार्थ और सूप को प्लास्टिक बैग से सीधे स्ट्रॉ से पिया जाता है। खानेवाली चीज़ें छुरी-काँटे से खाई जाती हैं। छुरी-काँटे एक ट्रे से चुम्बक द्वारा जुड़े होते हैं ताकि वो उड़ें नहीं। उड़ गए खाद्य पदार्थों को इकट्ठा करना ज़रूरी होता है ताकि वे हवा साफ करनेवाले फिल्टर आदि में अटक न जाएँ।

सारा कूड़ा-करकट थैलियों में इकट्ठा करके प्रोग्रेस (सामान ले जानेवाले अन्तरिक्ष यान) में भेज दिया जाता है जिसे पृथ्वी के वायुमण्डल में दुबारा प्रवेश करने से पहले ऊपर ही जला दिया जाता है। इसमें गन्दे कपड़े भी शामिल होते हैं। यहाँ हम कपड़े नहीं धोते।

खाने के बाद फिर से बहुत सारी कसरत और काम। ज़मीन पर अनजाने में ही हमारी बहुत-सी कसरत हो जाती है। वो इसलिए कि हमारे शरीर को लगातार गुरुत्वाकर्षण बल के विरुद्ध काम करना पड़ता है। सारा-सारा दिन हमारी माँसपेशियों व हड्डियों को हमारे शरीर का वज़न सम्भालना होता है। पर अन्तरिक्ष में माँसपेशियों-हड्डियों पर वैसा कोई दबाव न होता। इसलिए अपनी माँसपेशियों व हड्डियों को बचाने के लिए रोज़ाना कसरत करना बेहद ज़रूरी होता। रोज़ लगभग दो घण्टे हम कसरत करते। पृथ्वी वाले कसरत के उपकरण यहाँ किसी काम के नहीं होते। पृथ्वी पर 200 पाउण्ड का वज़न उठाना भले ही कसरत में आता हो लेकिन अन्तरिक्ष में यह वज़न ना के बराबर होता है। इसलिए वहाँ कसरत के खास उपकरण होते हैं। वहाँ वज़न उठाने की कसरतों के लिए इलास्टिक का इस्तेमाल होता है और स्थिर साइकिल को चलाने (ट्रेडमिल) के लिए एक रबर की रस्सी का इस्तेमाल होता है।

अगर मैं कहूँ कि मैं इस स्टेशन पर बड़ा हुआ हूँ तो गलत न समझना! वो इसलिए कि अन्तरिक्ष में यात्री लम्बे हो जाते हैं। वैसे तो मेरा कद करीबन 5 फीट 4 इंच होगा लेकिन वहाँ मैं पूरे एक इंच लम्बा हो गया था। ऐसा इसलिए कि गुरुत्वाकर्षण के अभाव में वहाँ रीढ़ की हड्डी लम्बी हो जाती थी। मैंने वहाँ अपने शुरुआती कद और बढ़े हुए कद का निशान लगा रखा था।

शाम 7:30 बजे से सोने के पहले के कामकाज शुरू हो गए। जैसे रात का खाना और एक बार फिर दल की कॉन्फ्रेंस। 9:30 से सोने का माहौल बनने लगता। आमतौर पर हम हफ्तेभर दिन में दस घण्टा काम करते और शनिवार को पाँच घण्टे। बाकी का समय आराम करते या अपने बचे कामों को निपटाने में लगे रहते।

यह सही है कि लम्बे समय तक घर से दूर रहना और वो भी कुछ ही लोगों के बीच कई बार काफी तनाव पैदा करनेवाला होता है। ऐसे में घर और घर के बाहर दोनों ही जगह रिश्तों को अच्छी तरह निभाने में हँसी-मज़ाक की भूमिका बहुत अहम होती है। तो हम इसका मौका कभी न चूकते। जैसे एक दफा मेरे एक साथी ने 1 अप्रैल को खबर दी कि **ISS** को कब्ज़े में लेने का गदर छिड़ गया है...! हम इस पर देर तक हँसते रहे।

खैर, इसी तरह तीन महीने कैसे बीते पता ही न चला। मुझे लगता है एक अन्तरिक्ष यात्री बनने के लिए बहुत ज़रूरी है महीनों तक एक-दूसरों के साथ हँसी-खुशी रह पाने का माद्दा होना...

मेरी पाकिस्तान यात्रा

चिन्तन गिरीश मोदी

एक थोड़ा बड़ा कागज़, पेंसिल और कुछ रंगीन पेन ले आओ। और सोचो कि "पाकिस्तान" शब्द सुनते ही कौन-सी छवियाँ, नाम या शब्द तुम्हारे ज़ेहन में आते हैं? समय की कोई पाबन्दी नहीं। सोचो और उन्हें कागज़ पर उतार लो। अपने दोस्तों, सहपाठियों, घर-परिवार-रिश्तेदारों से भी ऐसा करने को कहो। फिर इन सबके कागज़ों को इकट्ठा करो। देखो। तुम्हें इन सब में कौन-सी चीज़ें एक जैसी लगीं, कौन-सी अलग लगीं?

अब थोड़ी देर यहाँ रुकते हैं। सोचते हैं कि ये शब्द, ये तस्वीरें आईं कहाँ से! हो सकता है तुम्हारे कोई दोस्त या रिश्तेदार पाकिस्तान में रहते हों। उनसे तुमने वहाँ के बारे में सुना हो। या फिर किसी फिल्म या टीवी सीरियल में तुमने कुछ ऐसा देखा हो या अखबार में पढ़ा हो जो तुम्हारे भीतर अटक गया हो। और आज इस शब्द को सुन फिर याद आ गया हो। यह भी हो सकता है कि कागज़ पर जो कुछ तुमने लिखा या बनाया वह तुम्हारी इतिहास की क्लास में सुनी या किसी उपन्यास में पढ़ी या किसी बड़े-बुज़ुर्ग से सुनी बात की परछाईं हो। यह भी सम्भव है कि तुम्हारे दादा-दादी या कोई और रिश्तेदार विभाजन के बाद पाकिस्तान में बस गए हों। या कभी हाल में तुम पाकिस्तान गए हो या तुमने फेसबुक पर कोई पाकिस्तानी दोस्त बनाया हो और वहाँ से तुममें ये विचार जन्मे हों। कागज़ पर तुम्हारी बनाई छवियों और लिखे शब्दों के स्रोत इसके अलावा और भी कई हो सकते हैं।

पाकिस्तान के बारे में मैंने बहुत कुछ सुन रखा था। पढ़ रखा था। गया तो मैं वहाँ बहुत-बहुत बाद में। वैसे टीवी पर होने वाली बहसों-चर्चाओं में जो मैंने देखा था, मेरे अपने सीधे अनुभव उनसे एकदम अलग रहे। मैंने तय किया कि पाकिस्तान के बारे में मेरी राय मेरे अपने अनुभवों से ही बनेगी। और मैं तुमसे भी कुछ वो साझा करना चाहता हूँ जो खुद मैंने अनुभव किया। कुछ बातचीतें, कुछ किस्से, कुछ यादें, कुछ खुशबुएँ उन लोगों की जो अब मुझमें रहने लगे हैं...

●

एक बार इस्लामाबाद में कहीं जाने के लिए मुझे टैक्सी लेनी थी। मुझे टैक्सी तक छोड़ने आए एक दोस्त ने बताया कि वहाँ पहुँचने में लगभग 15 मिनट लगेंगे। टैक्सी में बैठते ही मैंने ड्राइवर को फोन पर बात करते सुना। वो शायद पश्तो में बोल रहा है। जब उसने फोन रखा तो मैंने पूछा, "क्या आप खैबर पख्तूनख्वाह से हैं?" वो बोला, "हाँ।" मैं चाह रहा था कि वो भी अन्दाज़ा लगाएँ कि मैं कहाँ से हूँ। देर तक सोचने के बाद वो शायद कहने ही वाले थे कि आप ही बताएँ कि मैं बोल पड़ा, "आप कोशिश तो करें!" "अच्छा तो आप सूबा तो बताएँ!" वो बोले। "नहीं, सूबा बताने से तो आपको जवाब जल्दी ही मिल जाएगा।" मैं बोला। काफी मज़ेदार बातचीत थी यह।

किसी तरह आखिर में वो बोले, "आप हिन्दुस्तान से हैं?" मैंने कहा, "जी हाँ, वहीं से हूँ। मुम्बई से।" यह सुनकर वो बहुत खुश हुए। उन्होंने कोई गाना चलाया और म्युज़िक सिस्टम की ओर इशारा करते हुए बोले, "ये सुनें, आपके मुल्क का गाना।" वो बॉलीवुड का कोई गाना था जो अब मुझे याद नहीं। मैंने उनसे आवाज़ कम करने के लिए कहा ताकि मैं गाने की बजाय उनकी

बातें सुन सकूँ। उनके साथ काफी दिलचस्प बातें हुईं। उन्होंने कहा, "आप तो मुम्बई से हैं। वहाँ तो आज़ादी होगी। पीने की, नाचने की। डिस्को जाने की।" मैं मुस्करा दिया। "काश यहाँ भी ऐसा होता।" वे आगे बोले।

और इस के बाद जो उन्होंने कहा वो मेरे लिए थोड़ा चकित कर देनेवाला था। "हमने सुना है आपके यहाँ खवातीन (महिलाओं) की इज़्ज़त नहीं होती। पाकिस्तान में ऐसा नहीं है। यहाँ कोई खातून रास्ते पर निकले तो कोई आँख उठाकर भी नहीं देखता।" अखबार में पढ़ी खबरों, अपने पाकिस्तानी दोस्तों से होती बातचीतों और अँधेरा होते ही सार्वजनिक स्थलों पर महिलाओं की घटती संख्या को देखते हुए तो इस बात पर यकीन करना मेरे लिए थोड़ा मुश्किल था। पर फिर भी मैं इसे दुबारा जाँच-परख लेना चाहता था। मैंने लाहौर और इस्लामाबाद की अपनी कुछ महिलावादी दोस्तों से इस बारे में बात की। उन सभी का कहना था कि टैक्सी ड्राइवर ने जो कहा असल में वो पाकिस्तानी समाज में जो आज सचमुच हो रहा है उसे ढाँपने जैसा है। उसे स्वीकार ही न करना है। भारत में भी तो ऐसा ही होता है। और सबसे बुरी बात तो यह है कि अगर हम मानेंगे ही नहीं कि हमारे समाज में महिलाओं के प्रति भेदभाव बरता जाता है, तो फिर इसका खात्मा होना तो दूर की बात है।

●

मैं लाहौर की माल रोड पर अल-हमरा कला परिषद् कॉम्प्लैक्स में था। इन्तज़ार था उपन्यासकार मोहसीन हामिद का। वे खयाल क्रिएटिव नेटवर्क के कला व साहित्य समारोह 2013 में आए थे। और अपना सत्र खत्म करने के बाद अपने प्रशंसकों से घिरे हुए थे। ऑटोग्राफ देकर जब वे जाने लगे तो मैं उनके पीछे-पीछे गया और बोला, "हैलो सर, मेरा नाम चिन्तन है। मैं भारत से आया हूँ। आपकी किताब *द रिलक्टेंट फण्डामेंटलिस्ट* मुझे बहुत अच्छी लगी। क्या मैं आपके साथ एक तस्वीर खिंचा सकता हूँ?"

वो मुस्कराए और बोले, "बेशक! क्यों नहीं।" मुझे बहुत खुशी हुई। मेरे उन्हें शुक्रिया कहने और उनके जाने के ठीक बाद दो युवा मेरे पास आए और मेरे साथ फोटो खिंचवाने के लिए पूछने लगे। मैंने पूछा, "क्या तुम सच में मेरे साथ फोटो खिंचवाना चाहते हो?" वे बोले "हाँ।" "पर मेरे साथ क्यों?" मैं आश्चर्य में था। "मैं तो कोई मशहूर हस्ती नहीं हूँ।" "क्योंकि आप भारत से हैं। हम इसके पहले किसी भारतीय से नहीं मिले।" उनमें से एक बोला। उनकी यह बात मुझे छू गई। उस वक्त मेरा मन किया कि मैं उन सारे शक्की भारतीयों को इनसे मिलाऊँ जिन्हें लगता था मैं पाकिस्तान गया तो किसी आतंकी हमले में मारा जा सकता हूँ। ऐसे लोगों की कमी नहीं। और मुझ पर अपनी चेतावनियों का कोई असर ना होते देख उन्हें जो मायूसी होती है, वो बड़ा चैन देती है मुझे।

खैर, उन दो लड़कों पर वापिस आते हैं। मैंने पूछा कि वे कहाँ से हैं। जवाब आया, "गिलगिट।" दिया। अब मेरी आँखों में चमक थी। "अरे वाह! मैं पहली बार गिलगिट के किसी व्यक्ति से मिल रहा हूँ। सुना है गिलगिट बहुत खूबसूरत है। मैंने उसके बारे में *एंपायर ऑफ द इंडस* किताब में पढ़ा है। सच, तुम से मिलकर बहुत खुशी हुई!", मैं बोला। मेरी भावुकता अब शायद उन्हें छू गई थी। वे बोले, "हाँ, आप ज़रूर आना वहाँ। वो बिलकुल आपके लद्दाख जैसा है।"

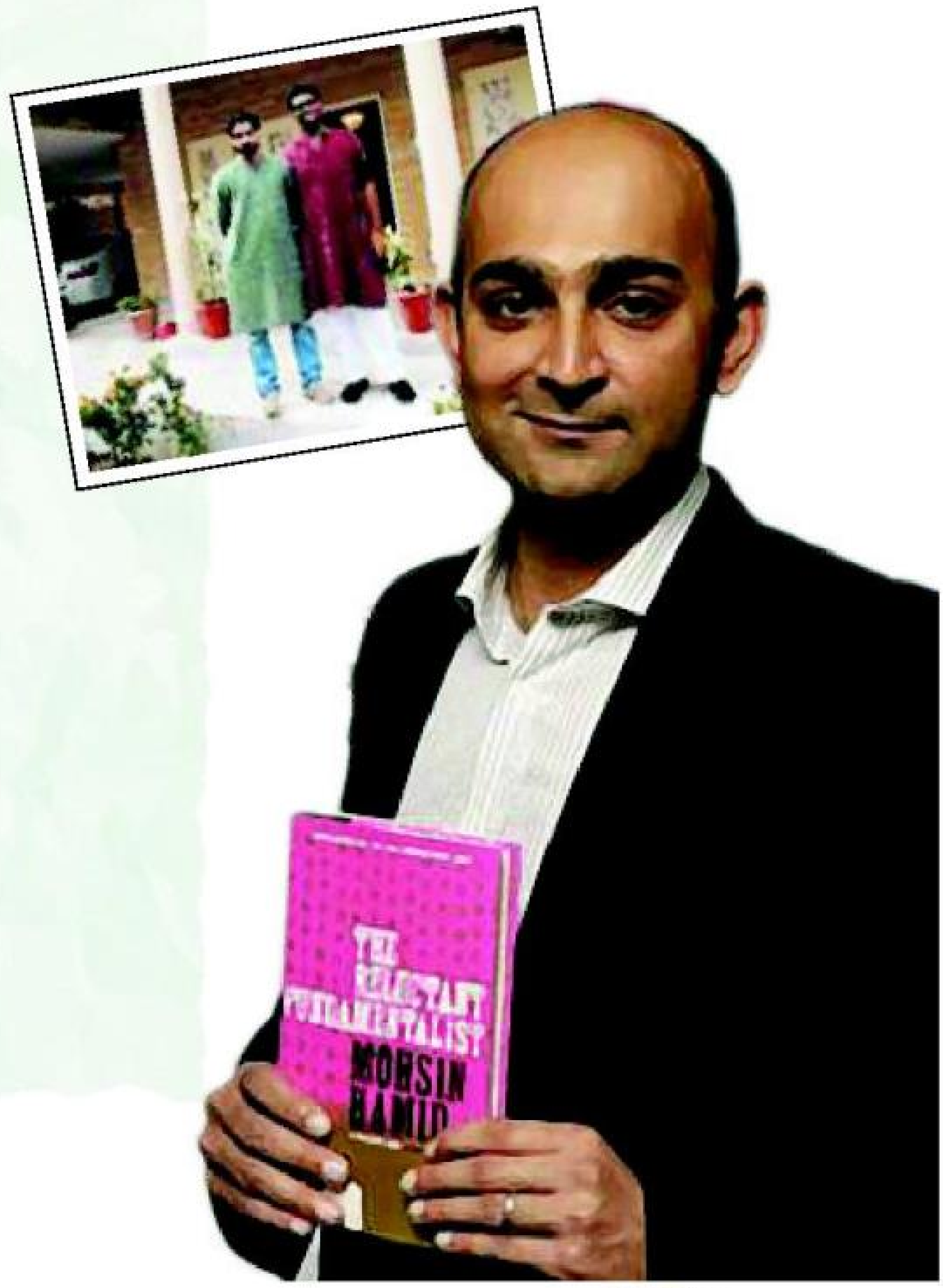

पक्षियों का अनोखा संसार (5)

पक्षियों की वंशावली : यानी अण्डे का फण्डा!

लेख और फोटोः जितेन्द्र भाटिया

म्यूज़ियम में थेरोपोड डाइनासॉर का कंकाल! माना जाता है कि सबसे छोटे आकारवाले थेरोपोड डाइनासॉर ही लाखों साल पहले पक्षियों के पूर्वज थे

जीवन की लोकप्रिय अनबूझ पहेलियों में से एक यह भी है कि पहले मुर्गी आई या अण्डा?

वैज्ञानिक डार्विन के अनुसार मनुष्य सहित सभी जीवित प्रजातियाँ अपने से पहले के जीवों से धीरे-धीरे विकसित हुई हैं। इस विकास में कई लाख साल लग गए। पक्षियों का विकास भी इसी सिद्धान्त के अनुसार हुआ है। पत्थरों में दबे फॉसिलों के बीच इस बात के कई प्रमाण मिलते हैं। वैज्ञानिक मानते हैं कि आज से 1500 लाख वर्ष पहले जुरासिक युग में थेरोपोड डाइनासॉरों के साथ-साथ विश्व के पहले पक्षियों का उद्‌भव हुआ था। प्रारम्भिक डाइनासॉरों के युग में पैदा होनेवाले जीवों में से आज पक्षियों को छोड़कर कोई भी अन्य बाकी नहीं बचा है।

दुनिया भर के सारे पक्षियों को एविएले (**aviale**) नाम के वैज्ञानिक नाम से पुकारा जाता है। इनकी सामान्य पहचान है – दो टाँगें, गर्म खून, पंखों और रीढ़ की हड्‌डी का होना और प्रजनन के लिए अण्डे देना। नन्हे से शक्करखोरे से लेकर विशालकाय शुतुरमुर्ग तक सभी पक्षियों में ये गुण मिल जाएँगे।

पक्षियों के पूर्वज थेरोपोड डाइनासॉरों के दाँत हुआ करते थे। लेकिन हज़ारों सालों के विकास के बाद पक्षियों के दाँत जाते रहे। दाँतों की जगह उनकी चोंच विकसित हुई जो उन्हें भोजन ढूँढने और पकड़ने में सहायता देती है। ज़मीन हो या पानी, रेत हो या दलदल, पक्षी अपनी अलग-अलग आकारों की चोंच से हर जगह अपना भोजन ढूँढ लेते हैं।

पक्षियों को मिले नाम "एविएले" का सम्बन्ध उनके उड़ने से है। लेकिन सभी पक्षी उड़ते हों, ऐसा नहीं है। वर्तमान युग के पक्षियों को वैज्ञानिकों ने दो प्रजातियों में बाँटा है – न उड़नेवाले **(neormithes)** और उड़नेवाले **(neognathae)** पक्षी।

उड़ न सकनेवाले पक्षियों का सबसे बड़ा प्रतिनिधिः शुतुरमुर्ग, दौड़ने की तैयारी में!

पंख होते तो उड़ जाती रे – कीवी पक्षी और अण्डा!

लम्बी दूरियाँ उड़कर सर्दियों में हमारे मैदानों में आनेवाली सरपट्टी सवन या Bar headed goose

चौड़े डैनों से आकाश में ऊँचे उड़नेवाला बड़ा जुमिज़ उकाब या Imperial eagle

जो पक्षी उड़ते नहीं उनमें प्रमुख हैं अफ्रीका में पाए जानेवाले शुतुरमुर्ग और ऑस्ट्रेलिया एवं न्यूज़ीलैण्ड के इमू और कीवी पक्षी। इनके अलावा भी कोई पचास दूसरी प्रजातियाँ होंगी जो ज़मीन से कुछ ऊपर तक हवा में छलाँग तो लगा लेती हैं पर उड़ नहीं सकतीं। लेकिन हैं ये सब पक्षी ही, क्योंकि ये अण्डे देते हैं और इनमें पक्षियों के बाकी सारे गुण भी हैं। दुनिया का सबसे बड़ा पक्षी शुतुरमुर्ग है। इसके पंख उड़ने की बजाय ज़मीन पर बहुत तेज़ भागने के काम आते हैं। कई देशों में शुतुरमुर्गों को भी मुर्गियों की तरह बड़े-बड़े फॉर्मों में अण्डे और माँस के लिए पाला जाता है।

ध्रुवों के ठण्डे प्रदेशों का पक्षी पेंग्विन उड़ तो नहीं सकता लेकिन इसे बर्फीले पानी में तैरना बखूबी आता है।

बस, इन गिने-चुने न उड़नेवाले पक्षियों को छोड़कर, बाकी सारे पक्षी उड़ सकते हैं। इनमें से कुछ के मज़बूत डैने लम्बी उड़ानों के लिए उपयुक्त होते हैं। गिद्ध और उकाब अपने चौड़े आकार के डैनों के सहारे बहुत ऊँचाई पर हवा में तैरते-से दिखाई देते हैं। दूसरी ओर मोर और तीतर जैसे पक्षी थोड़े समय के लिए कुछ ऊँचाई तक तो उड़ सकते हैं लेकिन इनका अधिकांश समय ज़मीन पर ही बीतता है। इसके विपरीत अबाबील-पतासी लगभग सारा समय ताड़ के पेड़ों के ऊपर आकाश में ही उड़ती रहती है। महासागर के कुछ पक्षी तो लगातार पानी के ऊपर फैले आकाश में ही अपना सारा जीवन व्यतीत करते हैं। मज़े की बात है कि इनमें से कुछ तो उड़ते-उड़ते ही अपनी नींद भी पूरी कर लेते हैं! चक मक

सारा दिन आकाश में उड़ती रहनेवाली सामान्य अबाबील

अधिकांश समय ज़मीन पर बितानेवाला सामान्य तीतर का जोड़ा

बतूता का जूता

इब्न बतूता पहन के जूता
निकल पड़े तूफान में
थोड़ी हवा नाक में घुस गई
घुस गई थोड़ी कान में

कभी नाक को कभी कान को
मलते इब्न बतूता
इसी बीच में निकल पड़ा
उनके पैरों का जूता

उड़ते-उड़ते जूता उनका
जा पहुँचा जापान में
इब्न बतूता खड़े रह गए
मोची की दूकान में

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना

प्रभात

बरसों पुरानी कविता "इब्न बतूता" आज भी बच्चों और बड़ों के बीच समान रूप से प्रिय बनी हुई है। कुछ रचनाएँ होती हैं जो लोकप्रियता के मामले में अपने रचनाकार को बहुत पीछे छोड़ देती हैं।

"इब्न बतूता" कविता को पढ़ने में, गाने में कुछ ऐसा आनन्द छिपा है जो इसे पुरानी नहीं पड़ने देता। बल्कि ऐसा है कि कविता में रस लेने की क्षमता जैसे-जैसे बढ़ती जाती है इस कविता का आनन्द उतना ही बढ़ता जाता है।

"इब्न बतूता" नाम ही सबको अपनी ओर खींच लेता है। बच्चों के लिए हिन्दी की एक से एक सुन्दर कविताएँ रचनेवाले गुलज़ार तक को इस नाम के जादू ने बाँध लिया। और उन्होंने "इब्न बतूता बगल में जूता" जैसा एक नया गीत ही रच डाला।

"इब्न बतूता" नाम से ही जो छवि दिमाग में आती है, जो बिम्ब बनता है, वह किसी सामान्य आदमी का नहीं बनता है। एक अजीबोगरीब विराट नायक का चित्र दिमाग में बनता है। क्योंकि कविता की पहली ही पंक्ति में वे जूता पहनकर तूफान में निकल पड़े हैं। वे इतनी जल्दी में हैं कि जूते भी ठीक से नहीं पहन पाए, केवल जूता ही पहनकर निकल पड़े हैं।

इधर इब्न बतूता जूता पैर में डालकर निकले नहीं कि तूफान और उनके बीच संघर्ष शुरू हो गया। "थोड़ी हवा नाक में घुस गई, घुस गई थोड़ी कान में।" इस हवा से जूझने में वे कभी अपनी नाक को मलते हैं कभी कान को। नाक और कान को मलते रहने में इस कदर सुधबुध भूले हैं कि उनके तूफानी सफर का एकमात्र साथी उनके पाँव का जूता पाँव से निकल जाता है। चूँकि यह तूफान के बीचों-बीच घटित हुआ है सो पाँव से निकलकर जूता उड़ रहा है। उड़ते रहता है कहीं गिरने का तो सवाल ही नहीं। अन्त में जब तक वह गिरने काबिल स्थिति में आता है वह जापान पहुँच चुका होता है। मतलब यह कि इब्न बतूता लाख कोशिशें करके भी उसे पकड़ नहीं सकते थे। और क्या उन्होंने कोशिशें की नहीं होंगी?

इस संघर्ष के अन्त में "इब्न बतूता खड़े रह गए मोची की दूकान में।" यह पंक्ति बताती है कि संघर्ष खत्म हो गया है। संघर्ष में जीत किसी की नहीं हुई है। हार भी किसी की नहीं हुई है। तूफान अपने रास्ते गया। तूफान से संघर्ष करनेवाले इब्न बतूता मोची की दूकान में खड़े हैं। शायद नया जूता बनवाने के वास्ते। किसी नई उम्मीद से भरे। उम्मीद से भरे नहीं होते तो कहीं आराम फरमा रहे होते या कराह रहे होते। लेकिन उन्हें तो जैसे रुकना नहीं है, लौटना नहीं है, फिर निकल पड़ना है। कविता गोली की गति से शुरू होती है और कविता खत्म होने के बाद भी उसकी यह गति थमती नहीं है।

इस कविता की अमरता का रहस्य यही है। हिन्दी में ऐसा व्यापक दृश्य रचती हुई बच्चों की कविता दूसरी नहीं दिखाई देती। धरती और आकाश के बीच एक तूफान है जिसमें इब्न बतूता पैर में जूता डालकर निकल पड़े हैं। इस पूरे दृश्य में ज़मीन बस दो ही जगह दिखाई देती है, एक तब जब बतूता का जूता जापान में कहीं गिरता है और दूसरी बार तब जब इब्न बतूता मोची की दूकान में खड़े हैं।

इस कविता में खेल का उत्सव है। ज़बरदस्त ड्रामा है। फिल्म का आनन्द है। इतने सारे रस पाठक कुछेक शब्दों से प्राप्त कर पाता है, यही इस कविता में कला है, शिल्प की ऊँचाई है।

इब्नबतूता

नरेश सक्सेना

संगीत और लय हमें दिल के धड़कने की लय के साथ जन्म से ही प्राप्त होती हैं। इसी लय से संगीत की सबसे सरल ताल कहरवा बनी है। बच्चों के खेलों के और लोरियों के सारे गीत मुख्यतः कहरवा ताल में ही बने।

कहरवा ताल यानी धक-धक-धक-धक की आवृत्ति गोया 1 2 3 4, 1 2 3 4! यानी धगिन तिनकधिन, धगिन तिनक धिन।

इब्न बतूता कविता भी कहरवा ताल में चलती है और अजीबोगरीब कल्पनाएँ और दृश्य रचने के साथ ही अपनी ध्वन्यात्मकता और लय से सिर्फ बच्चों को ही नहीं बड़ों को भी मोहित करती है।

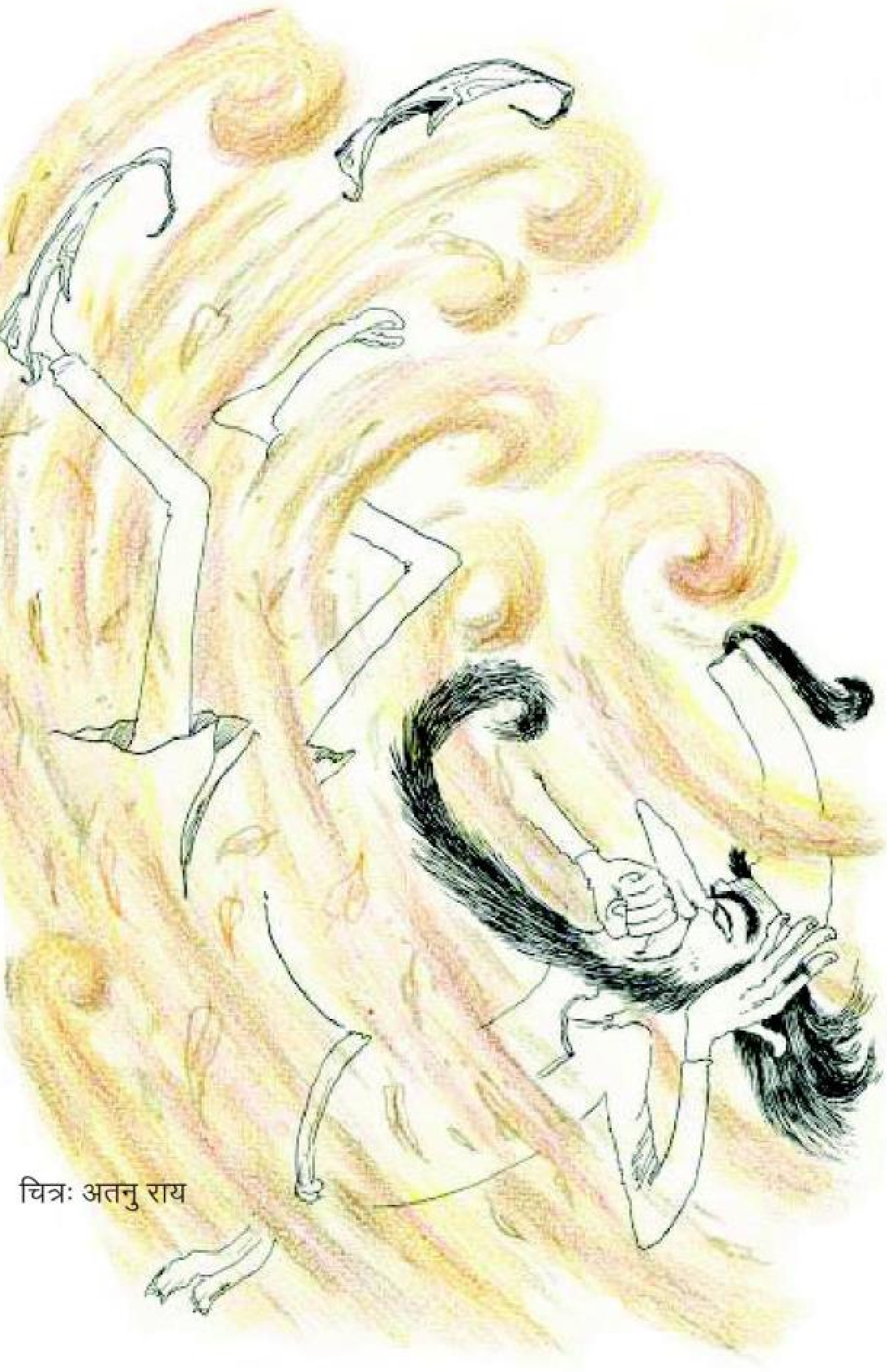

चित्रः अतनु राय

ज़रा देखो –

कविता में "न" की ध्वनि कितनी बार आई है। छह पंक्तियों की इस कविता में पन्द्रह बार।

जा पहुँचा जापान में "जाप" और "जापा" ये जो ध्वनियों का दोहराव है वह एक खास तरह की गूँज पैदा करता है।

उड़ते-उड़ते जूता जापान पहुँचता है। वह चीन या तुर्की नहीं पहुँच सकता है। तूफान की तुक मिलाने के लिए पाकिस्तान में ज़रूर पहुँच सकता था। लेकिन पाकिस्तान के अन्त में "तान" आता है जबकि तूफान के साथ जापान लगने पर "पान" और "फान" की संगति है। यह इसलिए मज़ा देती है कि व और फ एक ही परिवार के सदस्य हैं। इसे हम प, फ, ब, भ, म के नाम से जानते हैं। इब्न बतूता के कान और नाक में तूफान की हवा का आधा-आधा भर जाने के अपने ही मज़े हैं। जैसा विचित्र इब्न बतूता का नाम है वैसे ही विचित्र उसके नाक-कान होंगे!

बच्चों को गिरने, फिसलने या कुछ गड़बड़ हो जाने को कोई चिन्ता नहीं होती! वे हँसते हुए गिरते हैं फिसलते हैं और दूसरों के साथ ऐसी ही गड़बड़ हो जाए तब तो मज़ा और बढ़ जाता है।

इब्न बतूता कोई काल्पनिक नाम नहीं है। ये मोरक्को से पैदल ही दुनिया घूमने चल दिए थे। उस ज़माने में जब न रेलगाड़ियाँ थीं, न मोटरें चलती थीं। पहाड़ों, रेगिस्तानों और नदी-नालों को पार करते इब्न बतूता भारत भी आए थे।

बोलीरंगोली

इक पेड़ है जिससे,
एक ही पत्ता
रोज़ ज़मीं पर गिरता है.
सदियों से ये रीत है उसकी,
गिरता है, तब खिलता है!
- गुलज़ार

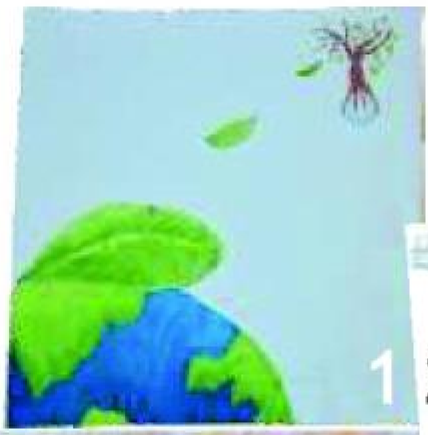

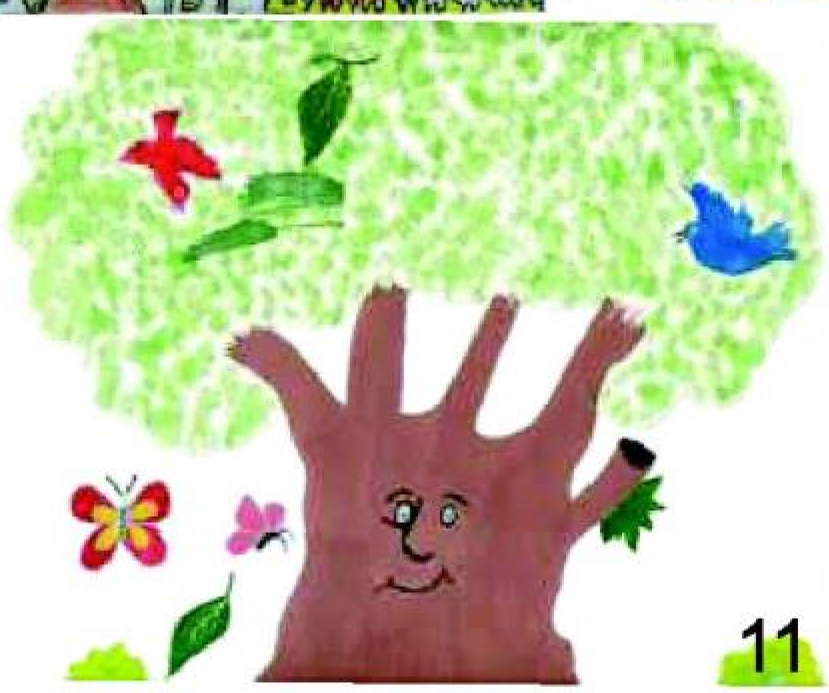

1. मो. अमज़द, किलकारी बालभवन, पटना/ 2. दिशा, दूसरी, अज़ीम प्रेमजी स्कूल ऊधमसिंह नगर, उत्तरांचल / 3 कुलदीप, दिगंतर, जयपुर/ 4 श्रेष्ठा, चौथी, डीपीएस, पटना/ 5 आचुकी, दिगंतर, जयपुर/ 6 वृंदा बंसल, पाँचवीं, डीपीएस, लुधियाना/ 7 अदित आहूजा, तीसरी, सालवान पब्लिक स्कूल, दिल्ली/ 8 मनीषा, भारती बालनिकेतन, भोपाल/ 9 गनेश, भारती बालनिकेतन, भोपाल/ 10 लीज़ा खातून, चौथी, कलकत्ता/ 11 सुष्मिता पांडे, आठवीं, परिवर्तन, नरेन्द्रपुर, सिवान/ 12 सुनील नायक, तीसरी, होली मिशन स्कूल, कलकत्ता/ 13 अपूर्वा कुमारी, पाँचवीं, डीपीएस पटना/ 14 प्रोनित चोपड़ा, पाँचवीं, डीपीएस, लुधियाना / 15 सजहन अली काजी, शिक्षामित्र, कलकत्ता/ 16 श्रेयांश सृजन, चौथी, डीपीएस, पटना

नयी ऊर्जा के साथ मंज़िल की ओर...

मुख्यमंत्री
श्री शिवराज सिंह चौहान
ने प्रदेश की बागडोर संभालते ही
विकास को नयी गति
देने के निर्णय लिये।

- अब, गरीबी रेखा के नीचे रहने वालों को गेहूं के साथ चावल भी 1 रुपये किलो मिलेगा।
- मध्यम वर्ग की समस्याओं के समाधान के लिए, मध्यम वर्ग आयोग का गठन होगा।
- व्यापार संभावनाएं बढ़ाने, मध्यप्रदेश व्यापार संवर्धन मंडल का गठन होगा।
- और अब खेतों को सड़कों से जोड़ने के लिए खेत-सड़क योजना बनी।
- मुख्यमंत्री कन्यादान योजना की राशि 15 हजार रुपयों से बढ़कर 25 हजार रुपये हुई।

आवरण : म.प्र. माध्यम/2013

दिनांक 27-1-2014, **D75219**

विकास के सफ़र पर निरंतर-मध्यप्रदेश

मध्यप्रदेश जनसम्पर्क द्वारा जारी

बसन्त मेरे गाँव का

मुकेश नौटियाल

मकर संक्रान्ति के बाद सूरज पंचाचूली के शिखरों से चौखम्भा पर्वत की तरफ खिसकना शुरू कर देता है। दादी कहती थीं कि जेठ तक सूरज हर सुबह बालिश्त भर छलाँग मारता है। पंचाचूली से चौखम्भा तक पहुँचने में सूरज को पूरे चार महीने का समय लग जाता है।

पंचाचूली की पाँच बर्फानी चोटियों और चौखम्भा के चार शिखरों के ऐन बीच में जो पहाड़ नज़र आ रहा है वह नन्दा पर्वत है। सूरज पंचाचूली से खिसककर जब नन्दा पर्वत तक पहुँचता है तो पहाड़ों में फ्यूंली के पीले फूल खिलने लगते हैं। पहाड़ी ढलानों पर खूबसूरती से कटे सीढ़ीनुमा खेतों में गेहूँ की हरियाली के बीच सरसों की पीलाई पसर जाती है। बसन्त बौराने लगता है।

बसन्त फूलदेई का त्यौहार लेकर आता है। देर शाम तक बच्चे फूल चुनते हैं। इन फूलों को रिंगाल (बाँस की एक प्रजाति) से बनी खास तरह की टोकरियों में रखा जाता है। टोकरियों को रात भर पानी से भरी गागरों के ऊपर रखा जाता है ताकि वो सुबह तक मुरझा न पाएँ। सुबह पौ फटते ही बच्चों की टोलियाँ गाँव भर में घूमती हैं। पिछली शाम चुने गए फूल घरों की देहरियों पर सजाए जाते हैं। जिनके घरों में फूल सजाए जाते हैं वे बच्चों को चावल, गुड़, दाल आदि देते हैं। दक्षिणा में मिली यह सामग्री पूरे इक्कीस दिन तक इकट्ठा की जाती है। फूलदेई की विदाई के साथ बसन्त का यह उत्सव समाप्त हो जाता है। अन्तिम दिन इकट्ठा की गई सामग्री से सामूहिक भोज बनाया जाता है। इस आयोजन में बड़ों की भूमिका केवल सलाह देने तक सीमित होती है। बाकी सारे काम बच्चे करते हैं। उत्तराखण्ड के हिमालयी अंचल में फूलदेई से बड़ा बच्चों का कोई दूसरा त्यौहार नहीं है।

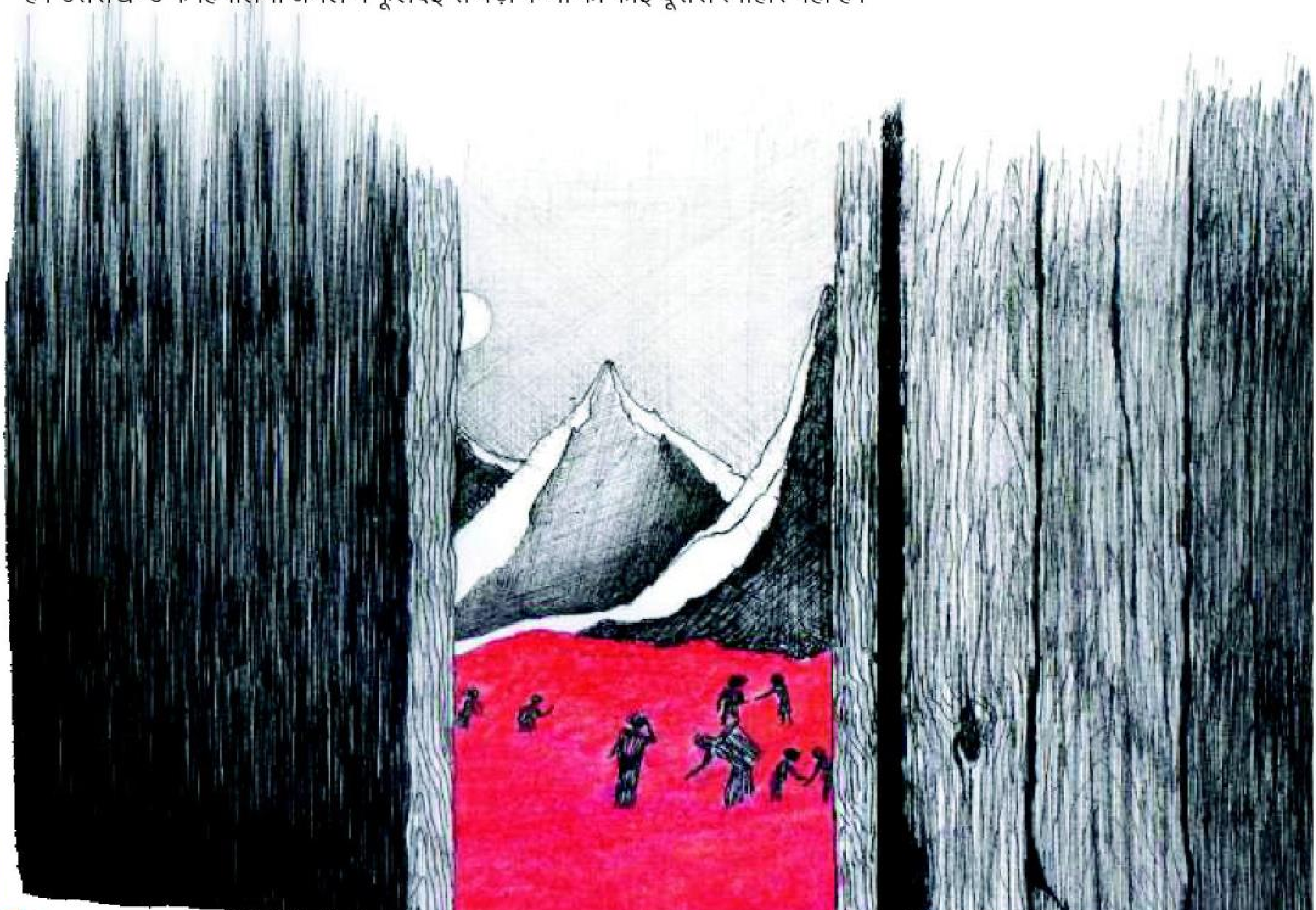

उधर बच्चे फूलदेई के जश्न में शामिल होते हैं और इधर बड़े ढोल-ढमाऊ की थाप पर चैती गीत गाते हैं। इन गीतों में पाण्डवों की हिमालय यात्रा के किस्से होते हैं और पहाड़ के वीरों की शौर्य गाथाएँ भी शामिल होती हैं। परम्परागत रूप से चैती गीत गानेवाले औजी जब गाँव में धमकते हैं तो वहाँ भीड़ जम जाती है। बसन्त में संगीत के सुर घुल जाते हैं।

बसन्त की गुनगुनी धूप जब दोपहरी में तपाने लगती है तब ऊँचे हिमालय शिखरों पर बुराँस चटखने लगते हैं। बुराँस के फूल पहाड़ों पर शानदार लालिमा बिछा देते हैं। मकर संक्रान्ति से तपता सूरज अब नन्दा पर्वत से चौखम्भा पर्वत की ओर बढ़ने लगता है। गंगा में पानी की धारा तेज़ हो जाती है। ठण्ड के मौसम में बर्फीले इलाकों से निचले इलाकों में उतरे पशुचारक वापस घरों को लौटने लगते हैं। महीनों तक फैले चारागाहों, घने जंगलों और अनजान बस्तियों में भटकने के बाद अपने घर लौटने की खुशी उत्सव का माहौल रच देती है। वे गीत गाते हैं, नाचते हैं। पशुचारकों के साथ उनकी भेड़-बकरियाँ, घोड़े-खच्चर और कुत्ते भी होते हैं। रास्ते में आनेवाले गाँवों से उनका लेन-देन भी होता रहता है। वे जानवरों के साथ-साथ कीड़ाजड़ी, करण और चुरू जैसी दुर्लभ हिमालयी जड़ी व औषधियाँ भी बेचते हैं। इन गाँवों से उनका सदियों का रिश्ता है, इसीलिए उसी वक्त पूरी कीमत चुकाना ज़रूरी नहीं होता। बर्फीले मौसम में निचले इलाकों की ओर जाते वक्त पुरानी वसूली की जाती है। मज़े की बात है कि नकद-उधार के आँकड़े कहीं दर्ज़ नहीं होते। आपसी विश्वास के दम पर वर्षों से यहाँ ये लेन-देन चल रहा है।

पशुचारकों के जत्थे जब गुज़र जाते हैं तब गाँव की जड़ में बहती गंगा से सटकर बनी

सूरज की यात्रा जारी रहने तक हमारे गाँव में बसन्त बौराता रहेगा।

चित्रः नर्गिस शेख

बसन्त मेरे गाँव का

सर्पीली सड़क में हलचल बढ़ जाती है। बद्रीनाथ, केदारनाथ, गंगोत्री और यमुनोत्री की ओर आनेवाले पैदल यात्री धामों के कपाट खुलने से काफी पहले आने लग जाते हैं। सुदूर दक्षिण के रामेश्वरम से आनेवाले महात्मा कई बार हमारे गाँव तक आ जाते हैं। उनके हाथ में एकतारा होता है और उसके संगीत पर वो भजन गाते हैं। बद्रीनाथ और केदारनाथ के मुख्य पुजारी आज भी दक्षिण भारत से नियुक्त होते हैं।

सूरज जब चौखम्भा पर्वत के ठीक पीछे से उदय होने लगता है तब जेठ शुरू हो जाता है। पहाड़ की सड़कें गाड़ियों से भर जाती हैं। अपने घर की छत से जब मैं बद्रीनाथ यात्रा-मार्ग की भीड़ देखता हूँ तो भूल जाता हूँ कि महज दो महीने पहले यह घाटी एकदम शान्त थी।

सदियों से यह ऋतु-चक्र यूँ ही चलता आ रहा है। हिमालय अपनी जगह मौजूद है और सूरज मुस्तैदी से अपनी यात्रा कर रहा है। पंचाचूली की पाँच चोटियों की ओर से जब सूरज प्रकट होता है तब मेरे गाँव में हाड़कँपा देने वाली ठण्ड पड़ती है। सूरज जब चौखम्भा के शिखर से उगता है तब जेठ की गर्मी चरम पर होती है। इन दोनों पर्वतों के बीच खड़े नन्दा पर्वत के आसपास सूरज की उपस्थिति मेरे गाँव में बसन्त के बौराने का प्रतीक है।

दादी कहती थीं – जब तक हिमालय रहेगा ऋतुओं के बदलने का उल्लास बना रहेगा। सूरज की यात्रा जारी रहने तक हमारे गाँव में बसन्त बौराता रहेगा। चक मक

चित्रों में आम बच्चे

(पेज 23 का शेष भाग)

बाद के सालों में चित्तप्रसाद ने बच्चों के लिए महाकाव्यों और लोककथाओं पर भी कई चित्र बनाए हैं। इसके साथ-साथ वे खुद कठपुतलियाँ बनाकर उनसे नाटक करते थे। मुम्बई में वे खेलाघर नाम से बच्चों के लिए बनाए गए संगठन के ज़रिए अपने घर के आँगन में नियमित कार्यक्रम करते थे। उनके दर्शकों में आसपास की बस्तियों के बच्चों के अलावा देश-विदेश के नामी गिरामी कलाकार भी होते थे। जैसे एम. एफ. हुसैन, पण्डित रविशंकर, बलराज साहनी, कैफी आज़मी, साहिर लुधियानवी, मजरूह सुलतानपुरी आदि। चक मक

चित्र पहेली

ऊपर से नीचे

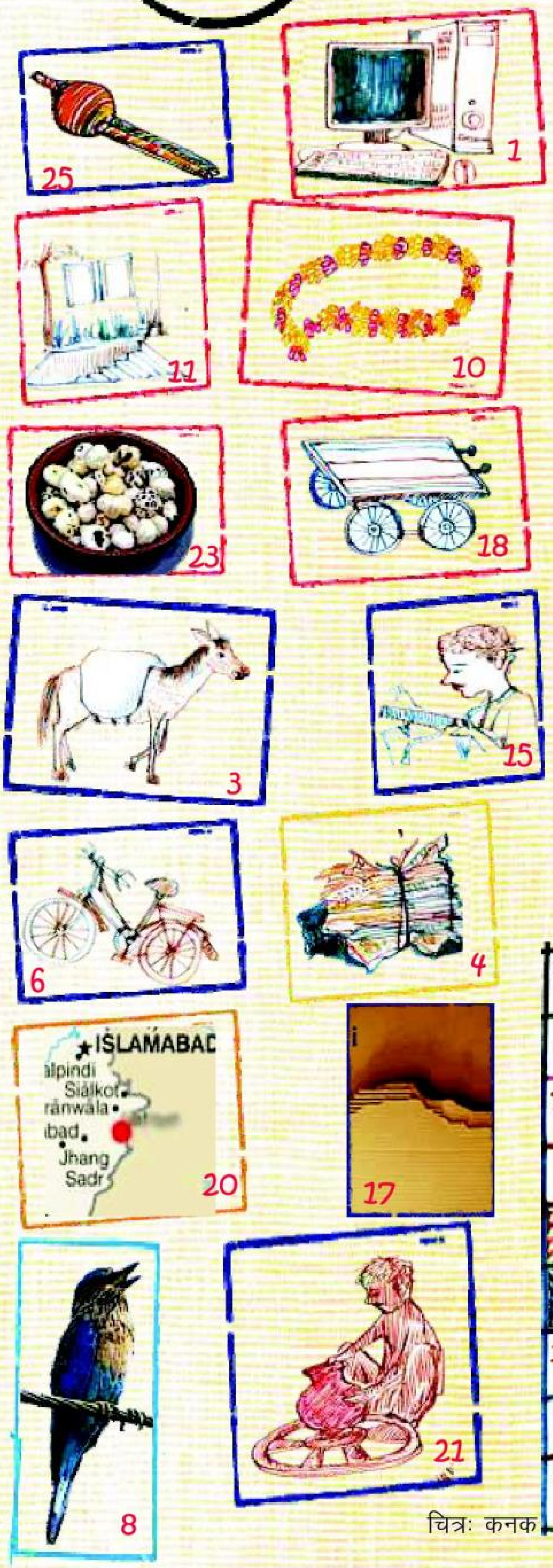

बाँए से दाँए

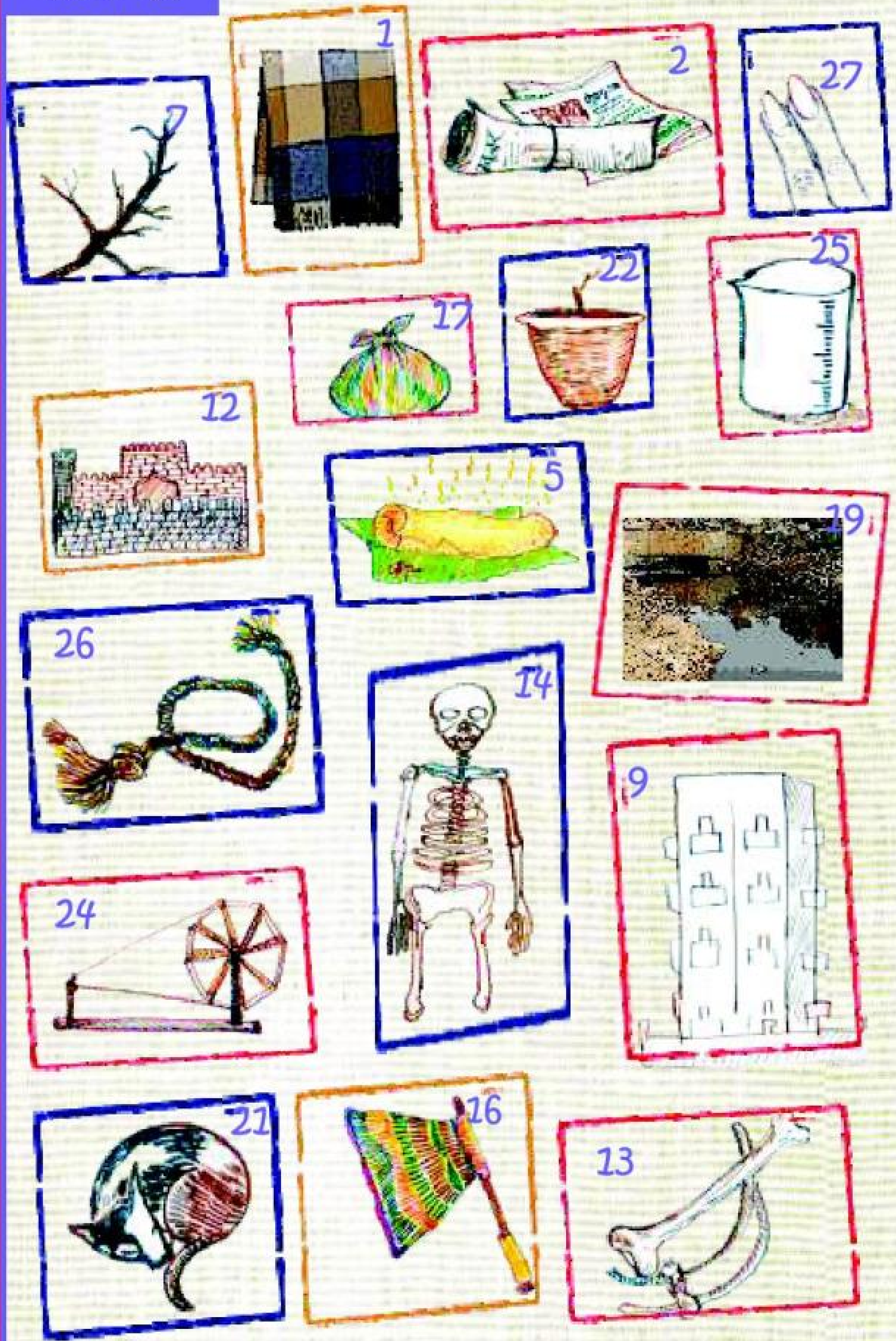

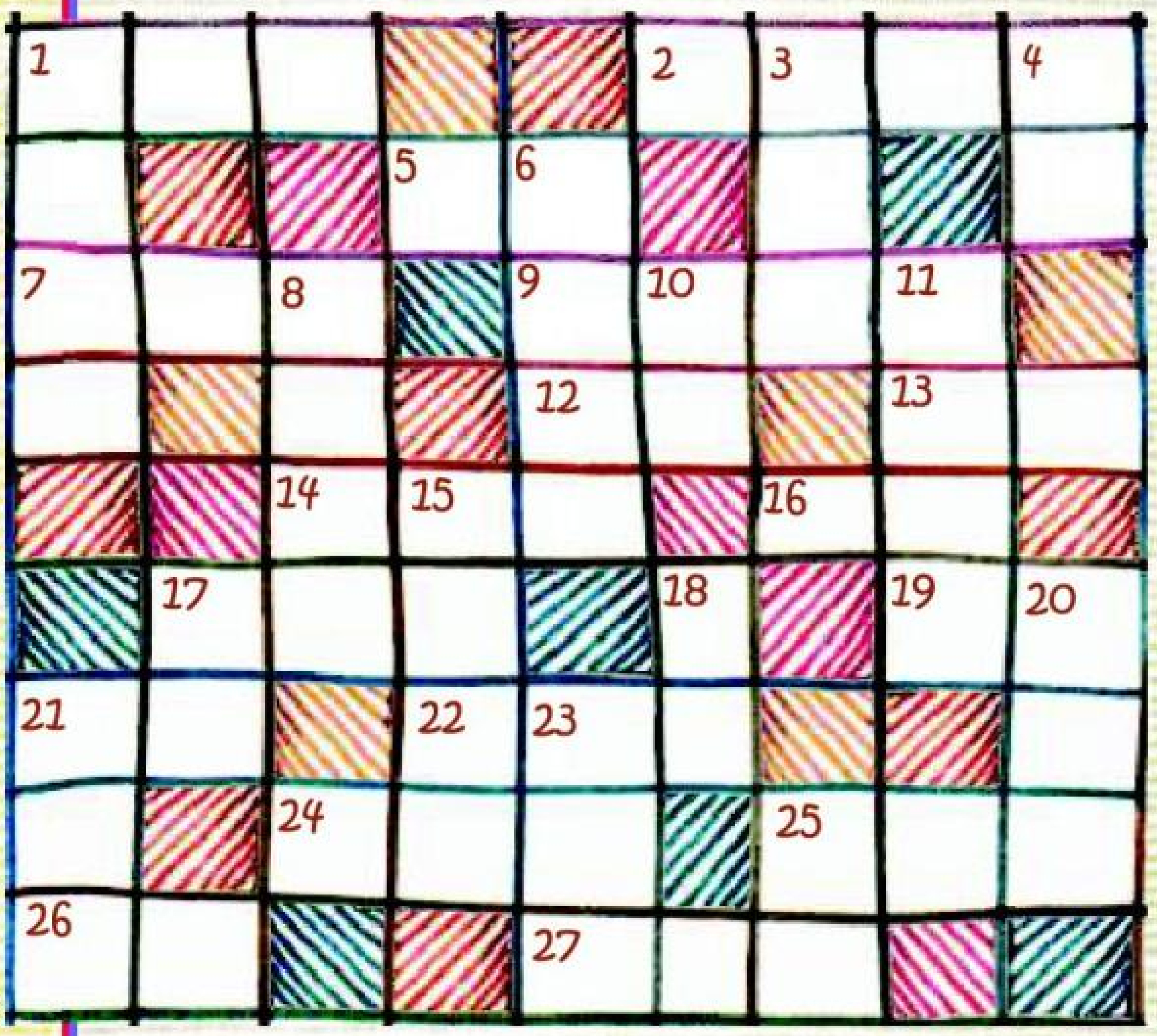

चित्रः कनक

RNI क्र. 50309/85 डाक पंजीयन क्र. म.प्र. / 261 / भोपाल / 2012-14

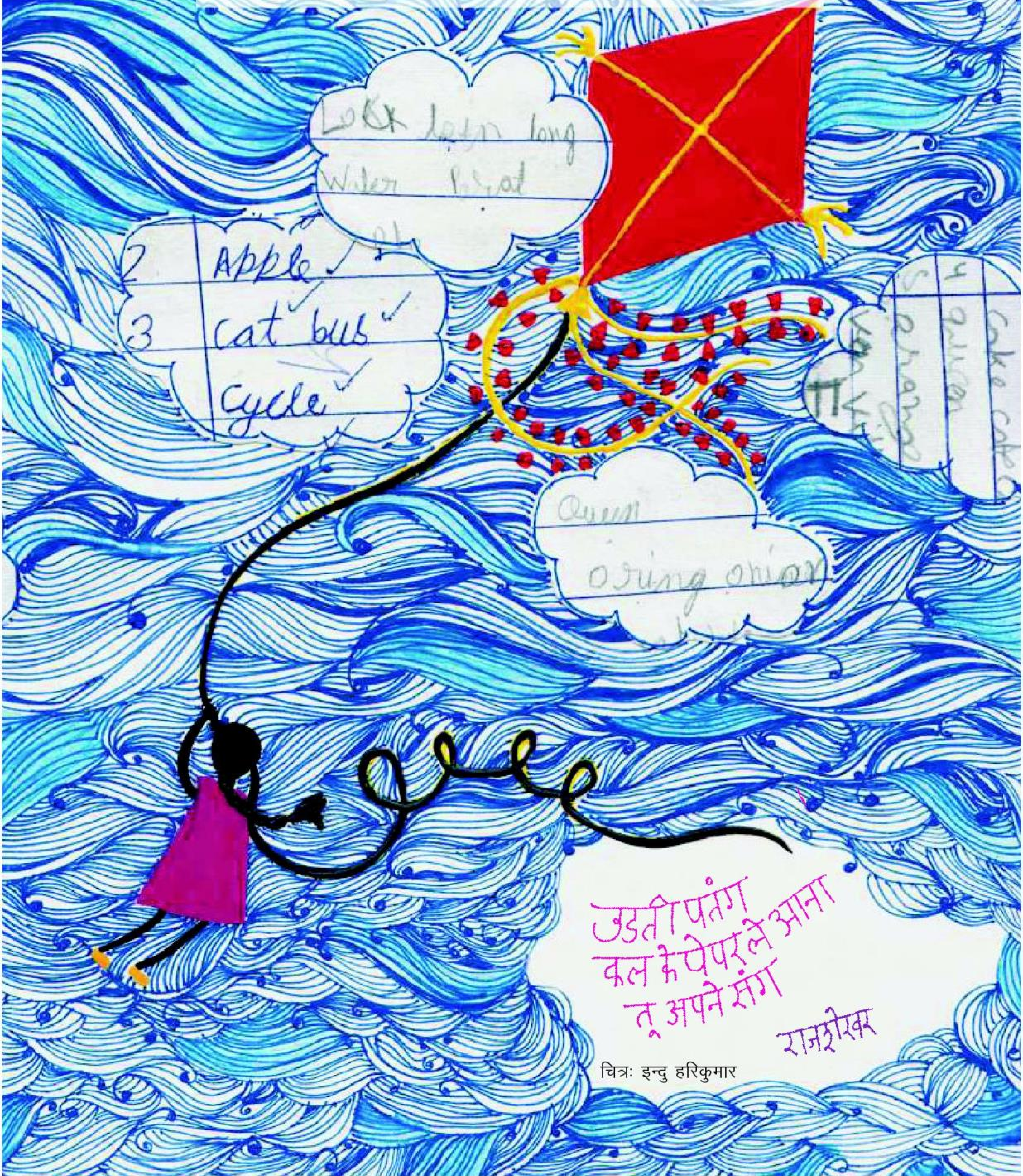

चित्रः इन्दु हरिकुमार

प्रकाशक एवं मुद्रक अरविन्द सरदाना द्वारा स्वामी रैक्स डी रोज़ारियो के लिए एकलव्य, ई-10, शंकर नगर, 61/2 बस स्टॉप के पास, भोपाल 462016, म.प्र. से प्रकाशित एवं आर. के. सिक्युप्रिन्ट प्रा. लि. प्लॉट नम्बर 15-बी, गोविन्दपुरा इंडस्ट्रियल एरिया, गोविन्दपुरा, भोपाल - 462021 (फोनः 0755 - 2687589) से मुद्रित।
सम्पादकः सुशील शुक्ल